यह पृथ्वी सात द्वीपों में बंटी हुई है। वे द्वीप एस प्रकार से हैं :

1) जम्बूद्वीप 2) प्लक्षद्वीप 3) शाल्मलद्वीप
4) कुशद्वीप 5) क्रौंचद्वीप 6) शाकद्वीप
7) पुष्करद्वीप

ये सातों द्वीप चारों ओर से क्रमशः खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जल के सात समुद्रों से घिरे हैं। ये सभी द्वीप एक के बाद एक दूसरे को घेरे हुए बने हैं और इन्हें घेरे हुए सातों समुद्र हैं। जम्बुद्वीप इन सब के मध्य में स्थित है।

सुमेरु पर्वत

इस द्वीप के मध्य में सुवर्णमय सुमेरु पर्वत स्थित है। इसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है और नीचे की ओर यह सोलह हजार योजन पृथ्वी के अन्दर घुसा हुआ है। इसका विस्तार, ऊपरी भाग में बत्तीस हजार योजन है, तथा नीचे तलहटी में केवल सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत कमल रूपी पृथ्वी की कर्णिका के समान है।

सुमेरु के दक्षिण में : हिमवान, हेमकूट तथा निषध नामक वर्षपर्वत हैं, जो भिन्न भिन्न वर्षों का भाग करते हैं।

सुमेरु के उत्तर में : नील, श्वेत और शृंगी वर्षपर्वत हैं।

इनमें निषध और नील एक एक लाख योजन फैले हुए हैं।

हेमकूट और श्वेत पर्वत नब्बे नब्बे हजार योजन फैले हुए हैं।

हिमवान और शृंगी अस्सी अस्सी हजार योजन फैले हुए हैं।

वर्षों की स्थिति एवं वर्णन

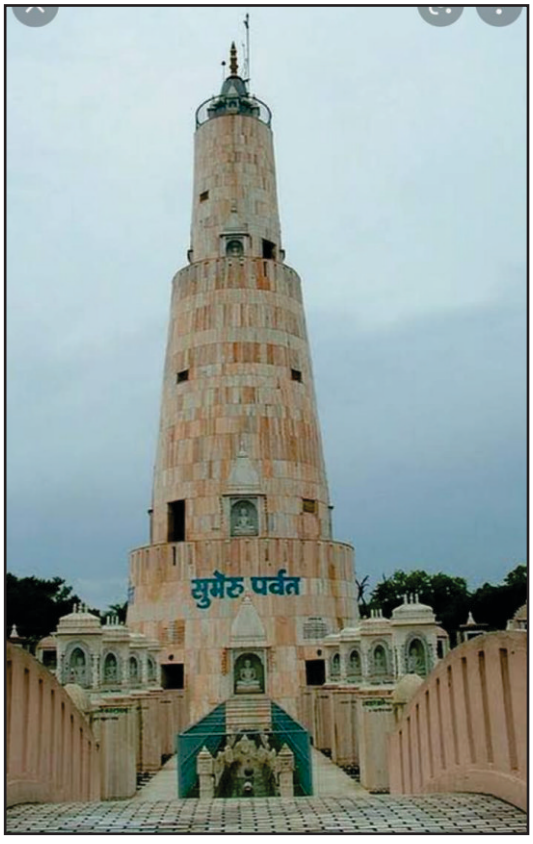

सुमेरु पर्वत

विदेह क्षेत्र के बीचों बीच में सुमेरु पर्वत स्थित है। यह एक लाख 40 योजन ऊँचा है। इसकी नींव एक हजार योजन की है। पृथ्वी तल पर इस पर्वत का विस्तार दस हजार योजन है। सुमेरु पर्वत की नींव के बाद पृथ्वी तल पर भद्रसाल वन स्थित है,

जिसकी पूर्व, दक्षिण आदि चारों दिशाओं में चार चैत्यालय स्थित हैं। मेरु पर्वत के ऊपर पाँच सौ योजन जाकर नन्दन वन है, यह पाँच सौ योजन प्रमाण कटनीरूप है। इसकी भी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं। इससे ऊपर साढ़े बासठ हजार योजन जाकर सौमनस वन है।

यह भी पाँच सौ योजन प्रमाण चौड़ा कटनीरूप है। इसके भी चारों दिशाओं में चार जिनालय हैं। सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन है, यह भी चार सौ चौरानवे योजन प्रमाण कटनीरूप है, इसमें भी चारों दिशाओं में चार चौत्यालय हैं। पाण्डुक वन के ऊपर मध्य में बारह योजन चौड़ी, चालीस योजन ऊँची चूलिका है। मेरु पर्वत नीचे से घटते–घटते चूलिका के अग्रभाग पर चार योजनमात्र का रह जाता है।

सुमेरु का वर्ण–यह पर्वत नीचे जड़ में एक हजार योजन तक वङ्कामय है। पृथ्वी तल से इकसठ हजार योजन तक उत्तम चित्र–विचित्र रत्नमय, आगे अड़तीस हजार योजन तक सुवर्णमय है एवं ऊपर की चूलिका नीलमणि से बनी हुई है। पाण्डुक शिला आदि–पाण्डुक वन की चारों दिशाओं में चार शिला हैं। ये शिलाएँ ईशान दिशा से लेकर क्रम से पाण्डुक शिला, पाण्डुकंबला, रक्ताशिला और रक्तकंबला नाम वाली हैं।

ये अर्ध चन्द्राकार हैं, सिंहासन, छत्र, मंगल, द्रव्य आदि से सुशोभित हैं। सौधर्म इन्द्र पाण्डुक शिला पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं, ऐसे ही 'पाण्डुवंबला' शिला पर पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का, 'रक्ता–शिला' पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का एवं 'रक्तवंबला' शिला पर पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत में षट्काल परिवर्तन से कर्मभूमि और भोगभूमि, दोनों की व्यवस्था होती रहती है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि हरि और रम्यक् क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि तथा विदेह क्षेत्र में मेरु के दक्षिण–उत्तर भाग में क्रम से देवकुरु–उत्तरकुरु नाम की उत्तम भोगभूमियाँ हैं। पूर्व और पश्चिम दोनों विदेहों में आठ–आठ वक्षार और ६–६ विभंगा नदियों से विदेह के १६–१६ भेद होने से बत्तीस विदेह क्षेत्र हो जाते हैं। उनमें शाश्वत कर्मभूमि है।

मेरु पर्वत के दक्षिण में

पहला भरतवर्ष, दूसरा किम्पुरुषवर्ष तथा तीसरा हरिवर्ष है। इसके दक्षिण में रम्यकवर्ष, हिरण्यमयवर्ष और तीसरा उत्तरकुरुवर्ष है। उत्तरकुरुवर्ष द्वीपमण्डल की सीमा पार होने के कारण भारतवर्ष के समान धनुषाकार है। इन सबों का विस्तार नौ हजार योजन प्रतिवर्ष है। इन सब के मध्य में इलावृतवर्ष है, जो कि सुमेरु पर्वत के चारों ओर नौ हजार योजन फैला हुआ है एवं इसके चारों ओर चार पर्वत हैं, जो कि ईश्वरीकृत कीलियां हैं, जो कि सुमेरु को धारण करती हैं, वर्ना ऊपर से विस्तृत और नीचे से अपेक्षाकृत संकुचित होने के कारण यह गिर पड़ेगा। ये पर्वत इस प्रकार से हैं:–

पूर्व में मंदराचल

दक्षिण में गंधमादन

पश्चिम में विपुल

उत्तर में सुपार्श्व

ये सभी दस दस हजार योजन ऊंचे हैं। इन पर्वतों पर ध्वजाओं के समान ग्यारह ग्यारह हजार योजन ऊंचे क्रमशः कदम्ब, जम्बु, पीपल और वट वृक्ष हैं। इनमें जम्बु वृक्ष सबसे बड़ा होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बुद्वीप पड़ा है। इसके जम्बु फल हाथियों के समान बड़े होते हैं, जो कि नीचे गिरने पर जब फटते हैं, तब उनके रस की धारा से जम्बु नद नामक नदी वहां बहती है। उसका पान करने से पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता। उसके मीनारे की मृत्तिका (मिट्टी) रस से मिल जाने के कारण सूखने पर जम्बुनद नामक सुवर्ण बनकर सिद्धपुरुषों का आभूषण बनती है।

वर्षों की स्थिति :

मेरु पर्वत के पूर्व में भद्राश्ववर्ष है और पश्चिम में केतुमालवर्ष है। इन दोनों के बीच में इलावृतवर्ष है। इस प्रकार उसके पूर्व की ओर चौत्ररथ, दक्षिण की ओर गन्धमादन, पश्चिम की ओर वैभ्राज और उत्तर की ओर नन्दन नामक वन हैं। तथा सदा देवताओं से सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस ये चार सरोवर हैं।

मेरु के पूर्व में : वीताम्भ, कुमुद, कुररी, माल्यवान, वैवंक आदि पर्वत हैं।

मेरु के दक्षिण में : चित्रकूट, शिशिर, पतंग, रुचक और निषाद आदि पर्वत हैं।

मेरु के उत्तर में : शंखकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कालंज आदि पर्वत हैं।

मेरु पर्वत : मेरु पर्वत के ऊपर अंतरिक्ष में चौदह सहस्र योजन के विस्तार वाली ब्रह्माजी की महापुरी या ब्रह्मपुरी है। इसके सब ओर दिशाओं तथा विदिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों के आठ रमणीक तथा विख्यात नगर हैं। विष्णु पादोद्भवा गंगाजी चंद्रमंडल को चारों ओर से आप्लावित करके स्वर्गलोक से ब्रह्मलोक में गिरतीं हैं, व सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा नाम से चार भागों में विभाजित हो जातीं हैं। सीता पूर्व की ओर आकाशमार्ग से एक पर्वत से दूसरे पर्वत होती हुई, अंत में पूर्वस्थित भद्राश्ववर्ष को पार करके समुद्र में मिल जाती है। अलकनंदा दक्षिण दिशा से भारतवर्ष में आती है और सात भागों में विभक्त होकर समुद्र में मिल जाती है।

चक्षु पश्चिम दिशा के समस्त पर्वतों को पार करती हुई केतुमाल नामक वर्ष में बहते हुए सागर में मिल जाती है। भद्रा उत्तर के पर्वतों को पार करते हुए उतरकुरुवर्ष होते हुए उत्तरी सागर में जा मिलती है। माल्यवान तथा गन्धमादन पर्वत उत्तर तथा दक्षिण की ओर नीलांचल तथा निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। उन दोनों के बीच कर्णिकाकार मेरु पर्वत स्थित है। मर्यादा पर्वतों के बहिर्भाग में भारत, केतुमाल, भद्राअश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्म के पत्तों के समान हैं। जठर और देवकूट दोनों मर्यादा पर्वत हैं, जो उत्तर और दक्षिण की ओर नील तथा निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। पूर्व तथा पश्चिम की ओर गन्धमादन तथा कैलाश पर्वत अस्सी अस्सी योजन विस्तृत हैं। इसी समान मेरु

के पश्चिम में भी निषध और पारियात्र दृ दो मर्यादा पर्वत स्थित हैं।

उत्तर की ओर निशृंग और जारुधि नामक वर्ष पर्वत हैं। ये दोनों पश्चिम तथा पूर्व की ओर समुद्र के गर्भ में स्थित हैं। मेरु के चारों ओर स्थित इन शीतान्त आदि केसर पर्वतों के बीच में सिद्ध–चारणों से सेवित अति सुंदर कन्दराएं हैं, देवताओं के मंदिर हैं, सुरम्य नगर तथा उपवन हैं। यहां किन्नर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव आदि क्रीड़ा करते हैं। ये स्थान सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वर्ग कहलाते हैं। ये धार्मिक पुरुषों के निवासस्थान हैं, पापकर्मा लोग सौवर्षों में भी यहां नहीं जा सकते हैं। विष्णु भगवान, भद्राश्ववर्ष में हयग्रीव रूप से, केतुमालवर्ष में वराहरूप से, भारतवर्षवर्ष में कूर्मरूप से रहते हैं। कुरुवर्ष में मत्स्य रूप से रहते हैं।

भारतवर्ष का वर्णन

समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में भारतवर्ष स्थित है। इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह स्वर्ग अपवर्ग प्राप्त कराने वाली कर्मभूमि है। इसमें सात कुलपर्वत हैंः महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र।

यहां के भाग : भारतवर्ष के नौ भाग हैं : इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण, तथा यह समुद्र से घिरा हुआ द्वीप उनमें नवां है।

विस्तार : ह द्वीप उत्तर से दक्षिण तक सहस्र योजन है। इसके पूर्वी भाग में किरात और पश्चिमी भाग में यवन बसे हुए हैं।

मुख्य नदियां

चारों वर्णों के लोग मध्य में रहते हैं। शतद्रू और चंद्रभागा आदि नदियां हिमालय से, वेद और स्मृति आदि पारियात्र से, नर्मदा और सुरसा आदि विंध्याचल से, तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या आदि ऋक्ष्यगिरि से निकली हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, सह्य पर्वत सेय कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलयाचल से, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्रगिरि से तथा ऋषिकुल्या एवंकुमारी आदि नदियां मान पर्वत से निकलीं हैं। इनकी और सहस्रों शाखाएं और उपनदियां हैं।

यहां के वासी

इन नदियों के तटों पर कुरु, पांचाल, मध्याअदि देशों केय पूर्व देश और कामरूप केय पुण्ड्र, कलिंग, मगध और दक्षिणात्य लोग, अपरान्तदेशवासी, सौराष्ट्रगण, तहा शूर, आभीर एवं अर्बुदगण, कारूष, मालव और पारियात्र निवासीय सौवीर, सन्धव, हूणय शाल्व, कोशल देश के निवासी तथा मद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसी गण रहते हैं। भारतवर्ष में ही चारों युग हैं, अन्यत्र कहीं नहीं। इस जम्बूद्वीप को बाहर से लाख योजन वाले खारे पानी के वलयाकार समुद्र ने चारों ओर से घेरा हुआ है। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है।

अन्य द्वीपों का वर्णन

पृथ्वी के द्वीपों और सागरों की स्थिति

लक्षद्वीप का वर्णन

लक्षद्वीप का विस्तार जम्बूद्वीप से दुगुना है। यहां बीच में एक विशाल लक्ष वृक्ष लगा हुआ है। यहां के स्वामि मेधा तिथि के सात पुत्र हुए हैं। ये थेः

शान्तहय, शिशिर, सुखोदय, आनंद, शिव, क्षेमक, ध्रुव।

यहां इस द्वीप के भी भारतवर्ष की भांति ही सात पुत्रों में सात भाग बांटे गये, जो उन्हीं के नामों पर रखे गये थेः शान्तहयवर्ष, इत्यादि।

सात मर्यादापर्वत : इनकी मर्यादा निश्चित करने वाले सात पर्वत हैंः गोमेद, चंद्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और वैभ्राज।

सात नदियां : इन वर्षों की सात ही समुद्रगामिनी नदियां हैं अनुतप्ता, शिखि, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता। इनके अलावा सहस्रों छोटे छोटे पर्वत और नदियां हैं। इन लोगों में ना तो वृद्धि ना ही ह्रास होता है। सदा त्रेतायुग समान रहता है। यहां चार जातियां आर्यक, कुरुर, विदिश्य और भावी क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। यहीं जम्बू वृक्ष के परिमाण वाला एक प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष है। इसी के ऊपर इस द्वीप का नाम पड़ा है।

इक्षु रस सागर : प्लक्षद्वीप अपने ही परिमाण वाले इक्षुरस के सागर से घिरा हुआ है।

शाल्मल द्वीप : इस द्वीप के स्वामि वीरवर वपुष्मान थे। इनके सात पुत्रों : श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ के नाम संज्ञानुसार ही इसके सात भागों के नाम हैं। इक्षुरस सागर अपने से दूने विस्तार वाले शाल्मल द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां भी सात पर्वत, सात मुख्य नदियां और सात ही वर्ष हैं।

पर्वत : कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोणाचल, कंक, महिष, ककुद्मान नामक सात पर्वत हैं।

नदियां : योनि, तोया, वितृष्णा, चंद्रा, विमुक्ता, विमोचनी एवं निवृत्ति नामक सात नदियां हैं।

सात वर्ष : श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात वर्ष हैं। यहां कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण नामक चार वर्ण हैं। यहां शाल्मल (सेमल) का अति विशाल वृक्ष है। यह द्वीप मदिरा से भरे अपने से दुगुने विस्तार वाले सुरासमुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है।

कुश द्वीप : इस द्वीप के स्वामि वीरवर ज्योतिष्मान थे। इनके सात पुत्रों : उद्भिद, वेणुमान, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर, कपिल के नाम संज्ञानुसार ही इसके सात भागों के नाम हैं। मदिरा सागर अपने से दूने विस्तार वाले कुश द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां भी सात पर्वत, सात मुख्य नदियां और सात ही वर्ष हैं।

पर्वत : विद्रुम, हेमशौल, द्युतिमान, पुष्पवान, कुशेशय, हरि और मन्दराचल नामक सात पर्वत हैं।

नदियां : धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत, अम्भा और मही नामक सात नदियां हैं।

सात वर्ष : उद्भिद, वेणुमान, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर, कपिल नामक सात वर्ष हैं। यहां दमी, शुष्मी, स्नेह और मन्देह नामक चार वर्ण हैं। यहां कुश का अति विशाल झाड़ है। यह द्वीप अपने ही बराबर के घी से भरे समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है।

क्रौंच द्वीप : इस द्वीप के स्वामि वीरवर द्युतिमान थे। इनके सात पुत्रों : कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि के नाम संज्ञानुसार ही इसके सात भागों के नाम हैं। घी का सागर अपने से दूने विस्तार वाले क्रौंच द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां भी सात पर्वत, सात मुख्य नदियां और सात ही वर्ष हैं।

पर्वत : क्रौंच, वामन, अन्धकारक, घोड़ी के मुख समान रत्नमय स्वाहिनी पर्वत, दिवावृत, पुण्डरीकवान, महापर्वत दुन्दुभि नामक सात पर्वत हैं।

नदियां : गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनिजवा, क्षांति और पुण्डरीका नामक सात नदियां हैं।

सात वर्ष : कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि। यहां पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य नामक चार वर्ण हैं। यह द्वीप अपने ही बराबर के दधिमण्ड (मठ्ठे) से भरे समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है। यह सागर अपने से दुगुने विस्तार वाले शाक द्वीप से घिरा है।

शाकद्वीप : इस द्वीप के स्वामि भव्य वीरवर थे। इनके सात पुत्रों : जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम के नाम संज्ञानुसार ही इसके सात भागों के नाम हैं। मठ्ठे का सागर अपने से दूने विस्तार वाले शाक द्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां भी सात पर्वत, सात मुख्य नदियां और सात ही वर्ष हैं।

पर्वत : उदयाचल, जलाधार, रैवतक, श्याम, अस्ताचल, आम्बिकेय औ अतिसुरम्य गिरिराज केसरी नामक सात पर्वत हैं।

नदियां : सुमुमरी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ती नामक सात नदियां हैं।

सात वर्ष : जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम। यहां वंग, मागध, मानस और मंगद नामक चार वर्ण हैं।

यहां अति महान शाक वृक्ष है, जिसके वायु के स्पर्श करने से हृदय में परम आह्लाद उत्पन्न होता है। यह द्वीप अपने ही बराबर के दुग्ध (दूध) से भरे समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है। यह सागर अपने से दुगुने विस्तार वाले पुष्कर द्वीप से घिरा है।

पुष्करद्वीप का वर्णन : इस द्वीप के स्वामि सवन थे। इनके दो पुत्र थेः महावीर और धातकि। क्षीर सागर अपने से दूने विस्तार वाले पुष्करद्वीप से चारों ओर से घिरा हुआ है। यहां एक ही पर्वत और दो ही वर्ष हैं।

पर्वत : मानसोत्तर नामक एक ही वर्षपर्वत है। यह वर्ष के मध्य में स्थित है। यह पचास हजार योजन ऊंचाऔर इतना ही सब ओर से गोलाकार फैला हुआ है। इससे दोनों वर्ष विभक्त होते हैं और वलयाकार ही रहते हैं।

नदियां : यहां कोई नदियां या छोटे पर्वत नहीं हैं।

दो वर्ष : महवीर खण्ड औ धातकि खण्ड। महावीरखण्ड वर्ष पर्वत के बाहर की ओर है और बीच में धातकिवर्ष है। यहां वंग, मागध, मानस और मंगद नामक चार वर्ण हैं।

यहां अति महान न्यग्रोध (वट) वृक्ष है, जो ब्रह्मा जी का निवासस्थान है यह द्वीप अपने ही बराबर के मीठे पानी से भरे समुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है।

सभी सागर

यह सभी सागर सदा समान जल राशि से भरे रहते हैं, इनमें कभी कम या अधिक जल नहीं होता। हां चंद्रमा की कलाओं के साथ साथ जल बढ़ता या घटता है। यह जल वृद्धि और क्षय 510 अंगुल तक देखे गये हैं।

मीठे सागर के पार : पुष्कर द्वीप को घेरे मीठे जल के सागर के पार उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है। वहां दस सहस्र योजन वाले लोक–आलोक पर्वत हैं। यह पर्वत ऊंचाई में भी उतने ही सहस्र योजन है। उसके आगे पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए घोर अन्धकार छाया हुआ है। यह अन्धकार चारों ओर से ब्रह्माण्ड कटाह से आवृत्त है। अण्ड–कटाह सहित सभी द्वीपों को मिलाकर समस्त भू–मण्डल का परिमाण पचास करोड़ योजन है।

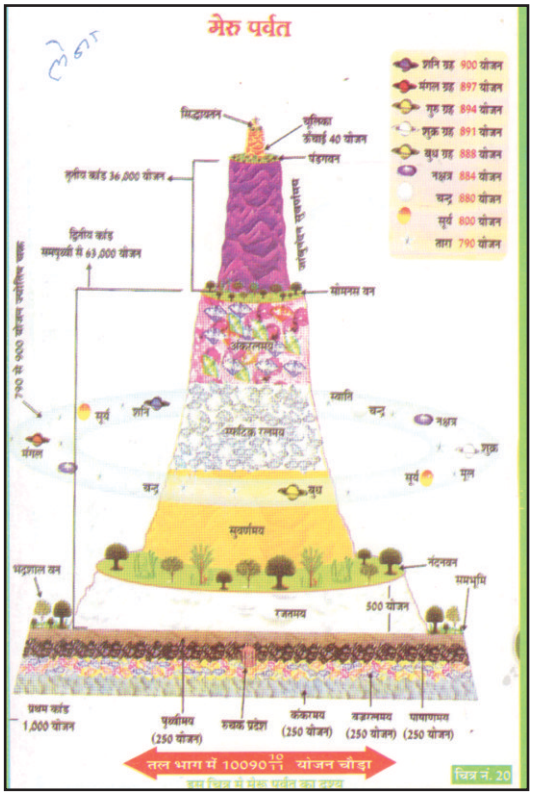

जम्बूद्वीप का समतल प्रारूप

मेरु पर्वत की स्थिति उत्तरी ध्रुव के निकट

महाभारत अनुसार

महाभारत में पृथ्वी का पूरा मानचित्र हजारों वर्ष पूर्व ही दे दिया गया था। महाभारत में कहा गया है कि यह पृथ्वी चन्द्रमंडल को देखने पर दो अंशों में खरगोश तथा अन्य दो अंशों में पिप्पल (पत्तों) के रूप में दिखायी देती है–

उपरोक्त मानचित्र ११वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य द्वारा महाभारत के निम्नलिखित श्लोक को पढ़ने के बाद बनाया गया था।

"सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः।।
यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः। एवं
सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चन्द्रमण्डले।।
द्विरंशे पिप्पलस्तत्र द्विरंशे च शशो महान्"
–वेद व्यास, भीष्म पर्व, महाभारत

अर्थात : हे कुरुनन्दन ! सुदर्शन नामक यह द्वीप चक्र की भाँति गोलाकार स्थित है, जैसे पुरुष दर्पण में अपना मुख देखता है, उसी प्रकार यह द्वीप चन्द्रमण्डल में दिखायी देता है। इसके दो अंशो मे पिप्पल और दो अंशो मे महान शश (खरगोश) दिखायी देता है। अब यदि उपरोक्त संरचना को कागज पर बनाकर व्यवस्थित करे तो हमारी पृथ्वी का मानचित्र बन जाता है, जो हमारी पृथ्वी के वास्तविक मानचित्र से बहुत समानता दिखाता है।

मेरु पर्वत से संबंधित सारांश

जंबूद्वीप में सात क्षेत्र हैं–भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत। इनमें विदेहक्षेत्र बीच में आ जाता है। इस विदेह के ठीक बीच में सुमेरुपर्वत स्थित है।

इस मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं जो कि एक दूसरे को वेष्ठित किए हुए हैं। इनमें सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है। इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में ही हम लोग रहते हैं।

हां, यह पर्वत पृथ्वीतल पर ही है। यह पर्वत एक लाख चालीस योजन ऊँचा है। इसकी नींव पृथ्वी के अन्दर १ हजार योजन की है अतः ऊपर में यह 99000 योजन ऊँचा है इसकी चूलिका 40 योजन प्रमाण है। नींव के तल में इसका विस्तार 1009010/99 योजन है। पृथ्वी के ऊपर इसका विस्तार 10000 योजन है। आगे घटते–घटते चूलिका के अग्रभाग में इसका विस्तार ४ योजन मात्र रह गया है। पृथ्वी पर जहां पर इसका विस्तार 10000 योजन है वहीं पर इस पर्वत के चारों ओर में भद्रशाल वन स्थित है। इस भद्रशाल वन में 500 योजन ऊपर जाकर नंदनवन आता है। यह नंदनवन मेरु के चारों ओर 500 योजन प्रमाण है अर्थात् मेरु में अंदर भाग में 500 योजन की कटनी है इसी का नाम नंदनवन है। नंदनवन में 62500 योजन ऊपर जाकर सौमनस वन है यह वन भी 500 योजन विस्तार वाला है। इससे ऊपर 36000 योजन जाकर पांडुकवन है। यह पांडुकवन नाम की कटनी 494 योजन विस्तृत है। इसके ठीक मध्य में 40 योजन ऊँची चूलिका है, जिसका विस्तार पांडुकवन में 12 योजन, मध्य में ८ योजन और अग्रभाग में 4 योजन मात्र है। इस पर्वत में हानि का क्रम–यह सुमेरु पर्वत पृथ्वीतल पर 10000 योजन विस्तृत है।

इसके विस्तार में 11 प्रदेश के ऊपर 1 प्रदेश घट गया है। ऐसे ही पांडुकवन तक घटता गया है अर्थात् जैसे 11 प्रदेश ऊपर जाने पर 1 प्रदेश घटता है, वैसे ही ११ अंगुल जाने पर १ अंगुल घटा है, ११ हाथ जाने पर १ हाथ घटा है और ११ योजन ऊपर जाने पर १ योजन घट जाता है। इतनी इसमें विशेषता है कि जब नंदनवन की कटनी अन्दर की ओर ५०० योजन प्रमाण की हो गई है तब नंदनवन से ऊपर ११००० योजन तक यह पर्वत समवृत्त रहा है अर्थात् इतने योजन तक ११ प्रदेश पर १ प्रदेश घटने का क्रम नहीं रहा है। ऐसे ही सौमनस वन भी ५०० योजन का होने से उसके ऊपर भी ११००० योजन तक समान रहा है इसके बाद घटने का क्रम बना है।

यह पर्वत मूल में–नींव में १ हजार योजन प्रमाण वङ्कामय है। पृथ्वीतल से लेकर ६१ हजार योजन पर्यन्त उत्तम रत्नमय है अर्थात् नाना रत्नों से निर्मित नाना वर्णमय है। आगे ३८००० योजन तक सुवर्णमय है और इसकी चूलिका नीलमणि से बनी हुई है।

भद्रशाल वन में चारों ही दिशाओं में चार जिनमन्दिर हैं। नंदनवन में चारों ही दिशाओं में एवं पांडुकवन की चारों ही दिशाओं में चार जिनमन्दिर होने से कुल १६ जिनमन्दिर हो जाते हैं। भद्रसाल के जिनमन्दिर का विस्तार २०० कोश, लम्बाई ४०० कोश और ऊँचाई ३०० कोश प्रमाण है। यही प्रमाण नंदनवन के चारों चौत्यालयों का है। सौमनवन के मन्दिरों का प्रमाण इनसे आधा है अर्थात् विस्तार १०० कोश, लम्बाई २०० कोश और ऊंचाई १५० कोश है। पांडुकवन के जिनमन्दिर इससे भी अर्धप्रमाण वाले हैं अर्थात् विस्तार ५० कोश, लम्बाई १०० कोश और ऊंचाई ७५ कोश प्रमाण है। पांडुकवन के जिनमन्दिर के प्रमुख द्वार की ऊंचाई १६ कोश, विस्तार ८ कोश है। मन्दिर के दक्षिण–उत्तर के द्वारों का प्रमाण इससे आधा होता है।

ये तीनों ही द्वार दिव्य तोरण स्तम्भों से संयुक्त हैं। ये जिनमन्दिर कुन्दपुष्प सदृश धवल मणियों से निर्मित हैं। इनके दरवाजे कर्वेहृतन आदि मणियों से निर्मित वङ्कामयी हैं। जिनमंदिर के मध्य में स्फटिक मणिमय १०८ उन्नत सिंहासन हैं। उन सिंहासनों पर ५०० धनुष१ प्रमाण ऊंची १०८ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं जो कि अनादि अनिधन हैं, अकृत्रिम हैं, इन जिनप्रतिमाओं में से प्रत्येक जिनप्रतिमा के आजू–बाजू में श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्हयक्ष व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां रहती हैं। प्रत्येक जिनप्रतिमा के निकट भृंगार, कलश, दर्पण, चंवर, ध्वजा, बीजना, छत्र और सुप्रतिष्ठ ये ८ मंगलद्रव्य प्रत्येक १०८–१०८ होते हैं। इन जिनमंदिरों में सुवर्ण, मोती आदि की मालाएं लटकती रहती हैं। धूपघट, मंगलघट आदि के प्रमाण अलग–अलग बताये हुए हैं। इन अकृत्रिम जिनमंदिरों का विस्तृत वर्णन त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थों से समझना चाहिए।

इन वनों में कर्पूर, तमाल, ताल, कदली, लवंग, दाडिम, पनस, सप्तच्छद, मल्ली, चंपक, नारंगी, मातुलिंग, पुनाग, नाग, कुब्जक, अशोक आदि वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। इन वनों में अनेक पुष्करिणी, वापिका आदि हैं। देवों के क्रीड़ागृह बने हुए हैं और अनेक कूट, देव भवन आदि से रमणीय हैं। वहां पर देवगण, विद्याधर आदि सतत क्रीड़ा किया करते हैं। चारणऋद्धिधारी मुनिगण भी वहां विचरण करते रहते हैं।

इस पर्वत के पांडुकवन में चारों दिशाओं में तो चार जिनमंदिर हैं और चारों विदिशाओं में चार शिलायें हैं जिनके नाम पांडुकशिला, पांडुवंह्बला, रक्ता शिला और रक्तवंह्बला हैं। ईशान दिशा में पांडुकशिला है, आग्नेय दिशा में पांडुकम्बला शिला है, नैऋत्य दिशा में रक्ता शिला है और वायव्य दिशा में रक्तकम्बला है। पांडुकशिला १०० योजन लम्बी, ५० योजन विस्तृत अर्धचन्द्राकार है। यह ८ योजन ऊंची है ऊपर समवृत्ताकार है और वनवेदी आदि से संयुक्त है। इस शिला के मध्य भाग में उन्नत सिंहासन है। इसके दोनों तरफ एक–एक भद्रासन है।

ये सिंहासन ५०० धनुष ऊंचे हैं। धवल छत्र, चामर, घन्टादि मंगलद्रव्यों से संयुक्त हैं और पूर्वाभिमुख हैं। सभी शिलायें इसी प्रकार हैं। मध्यलोक में भरतक्षेत्र में जब तीर्थंकर का जन्म होता है तब सौधर्म इन्द्र आदि स्वर्ग से आकर तीर्थंकर कुमार को बहुत ही वैभव के साथ ले जाकर मेरु की प्रदक्षिणा देते हुए पांडुक शिला के ऊपर स्थित मध्य के सिंहासन पर शिशु–भगवान को विराजमान करते हैं। सौधर्म इन्द्र दायीं ओर के भद्रासन पर और ईशानेंद्र बायीं ओर के भद्रासन पर स्थित होकर भगवान के जन्माभिषेक की क्रिया सम्पन्न करते हैं।

पांडुकशिला पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। पांडुकम्बला शिला पर पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। रक्ता शिला पर ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का एवं रक्तकम्बला शिला पर पूर्व विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। आज तक इस जंबूद्वीप के भरत–ऐरावत और पूर्वविदेह–पश्चिम विदेह में अनंतों तीर्थंकर हो चुके हैं। उन सभी के जन्माभिषेक का पुण्य अवसर इस सुमेरुपर्वत को ही प्राप्त हुआ है अतएव यह सुमेरुपर्वत महातीर्थ हो चुका है, महान् पवित्रता को प्राप्त है और अपने दर्शन, वंदन करने वालों को भी पवित्र करने वाला है। यह पर्वत तीनों लोकों और तीनों कालों में सबसे ऊंचा है, इसके समान अन्य कोई पर्वत न हुआ है और न होगा ही। सूर्य, चन्द्रमा आदि ज्योतिषीदेव भी सदा इस पर्वत की प्रदक्षिणा किया करते हैं।

आज के युग में हम लोगों के वहां तक पहुंचने की शक्ति नहीं है। यह पर्वत हमारे यहां से लगभग २० करोड़ मील की दूरी पर है। आज हम और आप इस पर्वत के चौत्यालयों की, उनमें विराजमान जिनप्रतिमाओं की परोक्ष में ही वंदना कर सकते हैं और इन पांडुक आदि शिलाओं की भी परोक्ष में ही वंदना करके महान पुण्य संचय कर सकते हैं, इसमें किञ्चित् भी संदेह नहीं है।

संकलित फोटो सहित

जंबूद्वीप का संक्षिप्त अवलोकन

तीन सौ ग्यारह पर्वत कहाँ हैं – सुमेरु पर्वत माह विदेह के मध्य में है। छह कुलाचल–सात क्षेत्रों की सीमा करते हैं। चार गजदंत मेरु की विदिशा में हैं। सोलह वक्षार विदेह क्षेत्र में हैं। बत्तीस विजयार्ध बत्तीस विदेह देश में हैं और दो विजयार्ध, भरत और ऐरावत में एक–एक हैं अतः चौंतीस विजयार्ध हैं। बत्तीस विदेह के ३२, भरत–ऐरावत के दो ऐसे चौंतीस वृषभाचल हैं। हैमवत, हरि तथा रम्यक और हैरण्यवत में एक–एक नाभिगिरि ऐसे चार नाभिगिरि हैं।सीता नदी के पूर्व–पश्चिम तट

पर एक–एक ऐसे चार यमकगिरि हैं। देवकुरु–उत्तरकुरु में दो–दो तथा पूर्व–पश्चिम भद्रसाल में दो–दो ऐसे आठ दिग्गज पर्वत हैं। सीता–सीतोदा के बीच बीस सरोवरों में प्रत्येक सरोवर के दोनों तटों पर पाँच–पाँच होने से दो सौ कांचनगिरि हैं।

जंबूद्वीप की संपूर्ण नदियां कितनी हैं और कहाँ कहाँ हैं ?

भरतक्षेत्र की गंगा–सिंधु २± इनकी सहायक नदियां 28000± हैमवतक्षेत्र की रोहित–रोहितास्या २± इनकी सहायक नदियां 56000± हरिक्षेत्र की हरित्–हरिकांता २± इनकी सहायक 1,12000± विदेहक्षेत्र की सीता–सीतोदा २± इनकी सहायक 1064000 (44000□2)± विभंगा नदी 12± इनकी सहायक 3,36,000(24000 X 12) बत्तीस विदेह देशों की गंगा–सिंधु और रक्ता–रक्तोदा नाम की ६४± इनकी सहायक नदियां ८६६०००(१४०००□६४)। रम्यकक्षेत्र की नारी–नरकांता २± इनकी सहायक नदियां १,१२,०००± हैरण्यवत क्षेत्र की रूप्यकला सुवर्णकूला २± इनकी सहायक ५६०००± ऐरावत क्षेत्र की रक्ता–रक्तोदा २± इनकी सहायक नदियां २८०००S 14560000।

अर्थात् सम्पूर्ण जंबूद्वीप में सत्रह लाख, बानवे हजार, नब्बे नदियां हैं। इनमें विदेह की नदियां चौदह लाख, अठहत्तर हैं। सीता–सीतोदा की जो परिवार नदियाँ हैं, वे देवकुरु–उत्तरकुरु में ही बहती हैं। आगे पूर्वविदेह–पश्चिम विदेह में विभंगा तथा गंगा सिंधु और रक्ता–रक्तोदा हैं। जितनी परिवार नदियां हैं वे सभी अपने–अपने कुण्डों से उत्पन्न होती हैं।

चौंतीस कर्मभूमि

भरतक्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि, वैसे ही ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि तथा बत्तीस विदेहों के आर्यखंड की ३२ कर्मभूमि ऐसे चौंतीस कर्मभूमि हैं। इनमें से भरत–ऐरावत में षट्काल परिवर्तन होने से ये दो अशाश्वत कर्मभूमि हैं एवं विदेहों में सदा ही कर्मभूमि व्यवस्था होने से वे शाश्वत कर्मभूमि हैं।

छह भोगभूमि

हैमवत और हैरण्यवत में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर मनुष्यों की शरीर की ऊँचाई एक कोस है, एक पल्य आयु है और युगल ही जन्म लेते हैं युगल ही मरते हैं। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से भोग सामग्री प्राप्त करते हैं।

हरिवर्ष क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर दो कोस ऊँचे, दो पल्य आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये भी भोग सामग्री को कल्पवृक्षों से प्राप्त करते हैं। देवकुरु–उत्तरकुरु क्षेत्र में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। यहाँ पर तीन कोस ऊंचे, तीन पल्य की आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये छहों भोगभूमियां शाश्वत हैं,यहाँ पर परिवर्तन कभी नहीं होता है।

जंबूवृक्ष-शाल्मलिवृक्ष : उत्तरकुरु में ईशान दिशा में जंबूवृक्ष एवं देवकुरु में नैऋत्य दिशा में शाल्मलिवृक्ष हैं।

चौंतीस आर्यखंड : एक भरत में, एक ऐरावत में और बत्तीस विदेहदेशों में बत्तीस ऐसे आर्यखंड चौंतीस हैं।

एक सौ सत्तर म्लेच्छखंड : भरत क्षेत्र के पाँच, ऐरावत क्षेत्र के पाँच और बत्तीस विदेह के प्रत्येक के पाँच–पाँच ५±५± (32x 5) 170 म्लेच्छ खंड हैं।

वेदी और वनखंड : जंबूद्वीप में 311 पर्वत हैं,उनके आजू–बाजू या चारों तरफ मणिमयी वेदियां हैं और वनखंड हैं।

नब्बे कुंड प्रमुख है : गंगादि 14 नदियां जहां गिरती हैं वहाँ के 14, विभंगा नदियों की उत्पत्ति के 12, विदेह की गंगादि–रक्तादि 64 नदियों की उत्पत्ति के 64 ऐसे 14± 12± 64 = 90 कुंड हैं। इनके चारों तरफ उतनी ही वेदी और वनखंड हैं।

26 सरोवर हैं–कुलाचल के 6 ± सीता–सीतोदा के 20 = 26। इनके चारों तरफ ही वनखंड हैं। जितनी नदियां हैं उनके दोनों पार्श्व भागों में अर्थात् 1792090 X 2 X = 3584180 मणिमयी वेदिका हैं और उतने ही वनखंड हैं।

इन वेदियों की ऊँचाई आधा योजन और विस्तार पाँच सौ धनुष प्रमाण है। सर्वत्र वनखंड आधा योजन चौड़े हैं।

जम्बूद्वीप में ५६८ कूट

उनका स्पष्टीकरण-

(१) हिमवान आदि छह कुलाचल के क्रमशः–

हिमवान–शिखरी पर्वत के 11 ± 11

महाहिमवान–रुक्मी के 8 ± 8

निषध –नील के 9 ± 9

ये 22 ±16±18 = 56 हैं।

(२) विदेह क्षेत्र के 32 विजयार्ध एवं भरत–ऐरावत के 2 ऐसे 34 विजयार्ध पर्वत के 9–9 कूट ऐसे 34 X 9 = 306 हैं।

(३) सोलह वक्षार पर्वत के 4 – 4 ऐसे 16 X 4 = 64 हैं।

(४) चार गजदंत के क्रमशः– 9 ± 7 ± 9 ± 7 ऐसे 32 हैं।

(५) सुमेरुपर्वत के नंदनवन व सौमनसवन में 9 ±9 ऐसे 18 हैं।

(६) गंगा–सिंधु आदि चौदह नदियों के नीचे गिरने के स्थान पर 14 कूट हैं, जिन पर गंगा आदि देवियों के महल की छत पर जटाजूट सहित अकृत्रिम जिनप्रतिमाएँ हैं, उन पर ही ये गंगा आदि नदियाँ अभिषेक करते हुए जैसी गिरती हैं। ऐसे गंगा आदि 14 नदियों के 14 हैं।

(७) हिमवान आदि छह पर्वतों के ऊपर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवरों में 13–13 कूट हैं। ऐसे 6 X 13 = 78 हैं। (देखें–तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ)ये सब कुल मिलाकर 56±306±64±32±18±14±78 = 568 कूट होते हैं।

विशेष : इनमें से छह कुलाचलों के एक–एक सिद्धकूट, चार गजदंत के एक–एक सिद्धकूट, सोलह वक्षार के एक–एक सिद्धकूट और चौंतीस विजयार्ध के एक–एक सिद्धकूट ऐसे–6±44±16±34 = 60 ऐसे सिद्धकूटों पर जम्बूद्वीप के 78 जिनमंदिर में से 60 जिनमंदिर हैं। शेष सभी कूटों पर देवभवनों में जिनमंदिर हैं उनकी गणना व्यंतर देवों के मंदिरों में होती है। इन्हीं 60 जिनमंदिरों में सुमेरु के १६ एवं जम्बूवृक्ष–शाल्मली वृक्ष के 2 मिलाने से 78 अकृत्रिम जिनमंदिर जम्बूद्वीप के होते हैं।

जंबूद्वीप के अठहत्तर जिनचौत्यालय

सुमेरु के चार वन संबंधी 16 ± छह कुलाचल के 6 ± चार गजदंत के 4± सोलह वक्षार के 16± चौंतीस विजयार्ध के 34 ± जंबू शाल्मलि वृक्ष के 2 = 78। ये जंबूद्वीप के अठहत्तर चौत्यालय हैं। इनमें प्रत्येक में 108 – 108 जिनप्रतिमायें विराजमान हैं उनको मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

इस जंबूद्वीप में हम कहाँ हैं ? यह भरतक्षेत्र, जंबूद्वीप के 190 वें भाग (526 –6 / 14) योजन प्रमाण है। इसके छह खंड में जो आर्यखंड है उसका प्रमाण लगभग निम्न प्रकार है।

दक्षिण का भरतक्षेत्र 238 योजन का है। पद्मसरोवर की लम्बाई 1000 योजन है तथा गंगा–सिंधु नदियां 5–5 सौ योजन पर्वत पर पूर्व–पश्चिम बहकर दक्षिण में मुड़ती हैं। यह आर्यखंड उत्तर–दक्षिण 238 योजन चौड़ा है। पूर्व–पश्चिम में 1000± 500±500.2000 योजन लम्बा है। इनको आपस में गुणा करने से 238 x 2000 = 476000 योजन प्रमाण आर्यखंड का क्षेत्रफल हो जाता है। इसके मील बनाने से 476000 x 4000 = 1904000000 (एक सौ नब्बे करोड़ चालीस लाख) मील प्रमाण क्षेत्रफल हो जाता है।

इस आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। इस अयोध्या के दक्षिण में 119 योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूर पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में 1000 योजन की दूरी पर गंगानदी की तटवेदी है अर्थात् आर्यखंड की दक्षिण दिशा

में लवण समुद्र, उत्तर दिशा में विजयार्ध, पूर्व दिशा में गंगा नदी एवं पश्चिम दिशा में सिंधु नदी है ये चारों आर्यखण्ड की सीमारूप हैं।

अयोध्या से दक्षिण में 4,76,000 मील (चार लाख छियत्तर हजार मील) जाने से लवण समुद्र है और उत्तर में, 4,76,000 मील जाने से विजयार्ध पर्वत है। उसी प्रकार अयोध्या से पूर्व में 40,00000 (चालीस लाख) मील दूर गंगानदी तथा पश्चिम में इतनी ही दूर पर सिंधु नदी है।

आज का सारा विश्व इस आर्यखंड में है। हम और आप सभी इस आर्यखंड में ही भारतवर्ष में रहते हैं।

षट्काल परिवर्तन

काल के दो भेद हैं–अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी के छह भेद हैं। सुषमासुषमा, सुषमा, सुषुमादुषमा, दुषमा सुषमा, दुषमा और दुषमा दुषमा। प्रथम काल चार कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है, द्वितीय काल तीन कोड़ाकोड़ी सागर, तृतीय काल दो कोड़ाकोड़ी सागर, चतुर्थ काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, पंचम काल इक्कीस हजार वर्ष का एवं छठा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है।

ऐसे उत्सर्पिणी के दुषुमा–दुषुमा से लेकर छह भेद हैं। उनमें छठे से पहले तक परिवर्तन चलता है। अवसर्पिणी में आयु, शरीर की ऊँचाई आदि का ह्रास होता है और उत्सर्पिणी में आयु, शरीर की ऊँचाई, सुख आदि की वृद्धि होती जाती है।

जब पहले इस भरतक्षेत्र के आर्यखंड में सुषमा–सुषमा काल चल रहा था तब वहाँ के मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई तीन कोस की थी और आयु तीन पल्य की थी, वे स्वर्ण सदृश वर्ण के थे। वे तीन दिन बाद कल्पवृक्षों से प्राप्त बदरीफल बराबर उत्तम भोजन ग्रहण करते थे। उनके मल–मूत्र, पसीना, रोग, अपमृत्यु आदि बाधायें नहीं थीं। वहाँ की स्त्रियां आयु के नव महीने शेष रहने पर गर्भ धारण करती थीं और युगल पुत्र– पुत्री को जन्म देती थीं। संतान के जन्म होते ही पुरुष को जंभाई और स्त्री को छींक आने से वे मर जाते थे। ये युगल वृद्धि को प्राप्त होकर कल्पवृक्षों से उत्तम सुख का अनुभव करते रहते थे।

दस प्रकार के कल्पवृक्ष–पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, मालांग, ज्योतिरांग, दीपांग, गृहांग, भोजनांग, पात्रांग और वस्त्रांग। ये उत्तम वृक्ष अपने नाम के अनुसार ही उत्तम वस्तुयें मांगने पर देते हैं। इसे उत्तम भोगभूमि कहते हैं।धीरे–धीरे आयु आदि घटते–घटते प्रथम काल समाप्त होकर दूसरा काल प्रवेश करता है। तब मनुष्यों की आयु दो पल्य, शरीर की ऊँचाई दो कोस और शरीर का वर्ण चन्द्रमा के समान रहता है। ये लोग दो दिन बाद कल्पवृक्षों से प्राप्त हुए बहेड़े के बराबर भोजन को ग्रहण करते हैं। इसे मध्यम भोगभूमि कहते हैं। द्वितीय काल पूर्ण हो जाने के बाद तृतीय काल प्रवेश करता है तब यहाँ के मनुष्यों की आयु एक पल्य, ऊँचाई एक कोस और शरीर का वर्ण हरित रहता है। ये एक दिन के अन्तर से आंवले के बराबर भोजन ग्रहण करते हैं। आगे क्रम से आयु आदि घटती जाती है इस प्रकार यह भोगभूमि का काल चल रहा था।

जब तृतीय काल में पल्य का आठवां भाग शेष रह गया तब ज्योतिरांग कल्पवृक्षों का प्रकाश मंद पड़ने से आकाश में सतत घूमने वाले सूर्य,चन्द्र दिखने लगे। उस समय प्रजा के डरने से 'प्रतिश्रुति' नाम के प्रथम कुलकर ने उनको वास्तविक स्थिति बताकर उनका डर दूर किया। ऐसे ही क्रम से तेरह कुलकर और हुए। अन्तिम कुलकर महाराज नाभिराज थे। उनकी पत्नी मरुदेवी युगलिया जन्म न लेकर किसी प्रधान कुल की कन्या थीं। उन दोनों का विवाह इन्द्रों ने बड़े उत्सव से कराया था।

पुनः चतुर्थ काल में जब चौरासी लाख पूर्व वर्ष, तीन वर्ष साढ़े आठ माह काल बाकी था तब अन्तिम कुलकर नाभिराज की रानी मरुदेवी के गर्भ में भगवान वृषभदेव आए और नव महिने बाद जन्म लिया। ये प्रथम तीर्थंकर थे। इनकी आयु चौरासी लाख वर्ष पूर्व की थी । इन्होंने कल्पवृक्ष के नष्ट हो जाने के बाद प्रजा को असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या इन षट्क्रियाओं से आजीविका करना बतलाया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये तीन वर्ण स्थापित किये। भगवान ने विदेहक्षेत्र की स्थिति को अपने अवधिज्ञान से जानकर यह सब व्यवस्था बनाई। भगवान की आज्ञा से इन्द्र ने कौशल, काशी आदि देश, अयोध्या, हस्तिनापुर, उज्जयिनी आदि नगरियों की रचना की। इस काल में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि और शरीर पाँच सौ धनुष का ऊँचा होता था।

भगवान ने अपनी पुत्रियों को ब्राह्मी लिपि और अंक लिपि सिखाई। पुत्र–पुत्रियों को सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात किया। अनन्तर दीक्षा लेकर मोक्षमार्ग को प्रगट किया। पुनः केवलज्ञान होने के बाद साक्षात् संपूर्ण जगत को जान लिया और अन्त में चतुर्थकाल के तीन वर्ष, आठ माह, एक पक्ष शेष रहने पर कार्तिक कृष्णा अमावस्या के उषाकाल में पावापुरी से मोक्ष गये हैं।

उसके बाद दुषमा नामक पंचमकाल आ गया। इसमें मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु 120 वर्ष और शरीर की ऊँचाई अधिक से अधिक सात हाथ की है। दिन पर दिन आयु आदि घट रहे हैं। महावीर स्वामी को हुये अब तक लगभग ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो गये हैं। हम लोग इस पंचमकाल के मनुष्य हैं।

आगे साढ़े अठारह हजार वर्ष तक भगवान महावीर का शासन चलता रहेगा, अनन्तर एक राजा दिगंबर मुनि से प्रथम ग्रास को शुल्करूप में मांगेगा तब मुनि अन्तराय करके जाकर आर्यिका, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ सहित सल्लेखना ग्रहण कर मरकर स्वर्ग जाएंगे। उस समय धरणेन्द्र कुपित हो राजा को मार देगा, तब राजा नरक जाएंगे। बस! धर्म का और राजा का अंत हो जाएगा।

अनंतर छठा काल आएगा, उस समय मनुष्यों का शरीर एक हाथ का, आयु सोलह वर्ष की मात्र रह जाएगी। ये मनुष्य पशुवृत्ति करेंगे। मांसाहारी होंगे, जंगलों में घूमेंगे, दुःखी, दरिद्री, रोगी, कुटुंबहीन होंगे। पुनः उनचास दिन के प्रलय के बाद इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर छठा काल समाप्त होगा और देव–विद्याधरों द्वारा रक्षा किये गये कुछ मनुष्य जीवित रहकर पुनः सृष्टि की परम्परा बढ़ाएंगे।

उत्सर्पिणी के छठे काल के बाद धीरे–धीरे पंचम आदि काल आते रहेंगे। यह काल परिवर्तन परम्परा अनादि है। जैनधर्म अनादि है यह सार्वधर्म है–सभी जीवों का हित करने वाला है। सभी तीर्थंकर इस धर्म का उपदेश देते हैं, वे स्वयं इस धर्म के प्रवर्तक नहीं हैं। ऐसे अनंतों तीर्थंकर हो चुके हैं और भविष्य में होते रहेंगे। कोई भी जीव अपने आप धर्म पुरुषार्थ के बल से अपने आपको तीर्थंकर भगवान बना सकता है, ऐसा समझना।

यह षट्काल परिवर्तन भरत, ऐरावत के आर्यखंडों में ही होता है अन्यत्र नहीं है।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वंतु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।

लवण समुद्र का वर्णन

लवणसमुद्र जंबूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए खाई के सदृश गोल है, इसका विस्तार दो लाख योजन प्रमाण है। एक नाव के ऊपर अधोमुखी दूसरी नाव के रखने से जैसा आकार होता है उसी प्रकार वह समुद्र चारों ओर आकाश में मण्डलाकार से स्थित है। उस समुद्र का विस्तार ऊपर दस हजार योजन और चित्रा पृथ्वी के समभाग में दो लाख योजन है। समुद्र के नीचे दोनों तटों में से प्रत्येक तट से पंचानवे हजार योजन प्रवेश करने पर दोनों और से एक हजार योजन की गहराई में तल विस्तार दस हजार योजन मात्र है।

समभूमि से आकाश में इसकी जलशिखा है,यह अमावस्या के दिन समभूमि से 11000 योजन प्रमाण ऊंची रहती है। वह शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर पूर्णिमा के दिन 16000 योजन प्रमाण ऊंची हो जाती है। इस प्रकार जल के विस्तार में 16000 योजन की ऊँचाई पर दोनों ओर समान रूप से 1,90000 योजन की हानि हो गई है। यहाँ प्रतियोजन की ऊँचाई पर होने वाली वृद्धि का प्रमाण 11–7/8 योजन प्रमाण है।

गहराई की अपेक्षा रत्नवेदिका से 95 प्रदेश आगे जाकर एक प्रदेश की गहराई है, ऐसे 95 अंगुल जाकर एक अंगुल, 95 हाथ जाकर एक हाथ, 95 कोस जाकर एक कोस एवं 95 योजन जाकर एक योजन की गहराई हो गई है। इसी प्रकार से 95 हजार योजन जाकर 1000 योजन की गहराई हो गई अर्थात् लवण समुद्र के समजल भाग से समुद्र का जल एक योजन नीचे जाने पर एक तरफ से विस्तार में 95 योजन हानिरूप हुआ है। इसी क्रम से एक प्रदेश नीचे जाकर प्रदेशों की, एक अंगुल नीचे जाकर 95 अंगुलों की, एक हाथ नीचे जाकर 95 हाथों की भी हानि समझ लेना चाहिये।

अमावस्या के दिन उक्त जलशिखा की ऊँचाई 11000 योजन होती है। पूर्णिमा के दिन वह उससे 5000 योजन बढ़ जाती है अतः 5000 के 15 वें भाग प्रमाण क्रमशः प्रतिदिन ऊँचाई में वृद्धि होती है।

16000–11000/15 = 5000/15, 5000/15 = 333, 1/3 योजन–तीन सौ तेतीस से कुछ अधिक प्रमाण प्रतिदिन वृद्धि होती है।

समुद्र के मध्य में पाताल : लवण समुद्र के मध्य भाग में चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ऐसे 1008 पाताल हैं। ज्येष्ठ पाताल 4, मध्यम 4 और जघन्य 1000 हैं। उत्कृष्ट पाताल चार दिशाओं में चार हैं, मध्यम पाताल 4 विदिशाओं में 4 एवं उत्कृष्ट मध्यम के मध्य में 8 अन्तर दिशाओं में 1000 जघन्य पाताल हैं।

४ उत्कृष्ट पाताल : उस समुद्र के मध्य भाग में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पाताल, कदम्बक, वड़वामुख और यूपकेसर नामक चार पाताल हैं। इन पातालों का विस्तार मूल में और मुख में 1000 योजन प्रमाण है। इनकी गहराई, ऊँचाई और मध्यविस्तार मूल विस्तार से दस गुणा–100000 योजन प्रमाण है। पातालों की वङ्कामय भित्तिका 500 योजन मोटी है। ये पाताल जिनेन्द्र भगवान द्वारा अरंजन–घट विशेष के समान कहे गये हैं। पाताल के उपरिम त्रिभाग में सदा जल रहता है, उनके मूल के त्रिभाग में घनी वायु और मध्य त्रिभाग में क्रम से जल, वायु दोनों रहते हैं।

सभी पातालों के पवन सर्वकाल शुक्ल पक्षों में स्वभाव से बढ़ते हैं एवं कृष्ण पक्ष में स्वभाव से घटते हैं। शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन 2222–2/9 योजन पवन की वृद्धि हुआ करती है। पूर्णिमा के दिन पातालों के अपने–अपने तीन भागों में से नीचे के दो भागों में वायु और ऊपर के तृतीय भाग में केवल जल रहता है। अमावस्या के दिन अपने–अपने तीन भागों में से क्रमशः ऊपर के दो भागों में जल और नीचे के तीसरे भाग में केवल वायु स्थित रहता है। पातालों के अन्त में अपने–अपने मुख विस्तार को 5 से गुणा करने पर जो प्राप्त हो, उतने प्रमाण आकाश में अपने–अपने पार्श्व भागों में जलकण जाते हैं।

''तत्त्वार्थराजवार्तिक'' ग्रंथ में जलवृद्धि का कारण किन्नरियों का नृत्य बतलाया है। यथा–''

रत्नप्रभाखरपृथ्वी–भाग
सन्नि–वेषिभवनालयवातकुमारतद्वनिताक्रीडा–जनि
तानिलसंक्षोभकृतपातालोन्मीलननिमीलनहेतुकौ
वायुतोयनिष्क्रमप्रवेशौ भवतः। तत्कृता
दशयोजनसहस्रविस्तारमुखजलस्योपरि
पंचाशद्योजनावधृता जलवृद्धिः। तत उभयत
आरत्नवेदिकायाः सर्वत्र द्विगव्यूतिप्रमाणा
जलवृद्धिः। पातालोन्मीलन–वेगोपशमेन हानिः।

अर्थ– रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में रहने वाली वातकुमार देवियों की क्रीडा से क्षुब्ध वायु के कारण 500 योजन जल की वृद्धि होती है अर्थात् वायु और जल का निष्क्रम और प्रवेश होता है और दोनों तरफ रत्नवेदिका पर्यन्त सर्वत्र दो गव्यूति प्रमाण जलवृद्धि होती है। पाताल के उन्मीलन के वेग की शांति से जल की हानि होती है। इन पातालों का तीसरा भाग 100000/3. 33333–1/3 योजन प्रमाण है।

ज्येष्ठ पाताल सीमंत बिल के उपरिम भाग से संलग्न हैं अर्थात् ये पाताल भी मृदंग के आकार के गोल हैं, समभूमि से नीचे की गहराई का जो प्रमाण है वह इन पातालों की ऊँचाई है। यदि प्रश्न यह होवे कि एक लाख योजन तक इनकी गहराई समतल से नीचे कैसे होगी ?तो उसका समाधान यह है कि रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, वहाँ खरभाग, पंकभाग पर्यन्त ये पाताल पहुँचे हुए ऊँचे गहरे हैं।

४ मध्यम पाताल : विदिशाओं में भी इनके समान चार पाताल हैं, उनका मुख विस्तार और मूल विस्तार 1000 योजन तथा मध्य में और ऊँचाई, गहराई में 10,000 योजन है, इनकी वङ्कामय भित्ति 50 योजन प्रमाण है। इन पातालों के उपरिम तृतीय भाग में जल, नीचे के तृतीय भाग में वायु, मध्य के तृतीय भाग में जल, वायु दोनों रहते हैं। पातालों की गहराई–ऊँचाई 10,000 योजन है, 10,1000 / 3 = 3333–1 / 3 पातालों का तृतीय भाग तीन हजार तीस सौ तेतीस से कुछ अधिक है। इनमें प्रतिदिन होने वाली जलवायु की हानि–वृद्धि का प्रमाण 222–2 / 9 योजन प्रमाण है।

1000 जघन्य पाताल–उत्तम, मध्यम पातालों के मध्य में आठ अन्तर दिशाओं में एक हजार जघन्य पाताल हैं। मध्यम पाातालों की अपेक्षा दसवें भाग मात्र है अर्थात् मुख और मूल में ये पाताल 100 योजन हैं। मध्य में चौड़े और गहरे 1000 योजन प्रमाण हैं। इनमें भी उपरिम त्रिभाग में जल, नीचे में वायु और मध्य में जलवायु दोनों हैं। इनका त्रिभाग 333–1 / 3 योजन है और प्रतिदिन जलवायु की हानि–वृद्धि 22–2 / 9 योजन मात्र है।

नागकुमार देवों के 1,42,000 नगर–लवणसमुद्र के बाह्य भाग में 72000, शिखर पर 28000 और अभ्यन्तर भाग में 42000 नगर अवस्थित हैं। समुद्र के अभ्यन्तर भाग की वेला की रक्षा करने वाले वेलंधर नागकुमार देवों के नगर 42000 हैं। जलशिखा को धारण करने वाले नागकुमार देवों के 28000 नगर हैं एवं समुद्र के बाह्य भाग की रक्षा करने वाले नागकुमार देवों के 72000 नगर हैं।

ये नगर दोनों तटों से 700 योजन जाकर तथा शिविर से 700–1 / 2 योजन जाकर आकाश तल में स्थित हैं। इनका विस्तार 10,000 योजन प्रमाण है। नगरियों के तट उत्तम रत्नों से निर्मित समान गोल हैं। प्रत्येक नगरियों में ध्वजाओं, तोरणों से सहित दिव्य तट वेदियाँ हैं। उन नगरियों में उत्तम वैभव से सहित वेलंधर और भुजग देवों के प्रासाद स्थित हैं। जिनमंदिरों से रमणीय, वापी, उपवनों से सहित इन नगरियों का वर्णन बहुत ही सुन्दर है, ये नगरियाँ अनादिनिधन हैं।

उत्कृष्ट पाताल के आसपास के 8 पर्वत–समुद्र के दोनों किनारों में बयालीस हजार योजन प्रमाण प्रवेश करके पातालों के पार्श्व भागों में आठ पर्वत हैं। (ऊपर) तट से 42000 योजन आगे समुद्र में जाकर ''पाताल'' के पश्चिम दिशा में कौस्तुभ और पूर्व दिशा में कौस्तुभास नाम के दो पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत रजतमय,धवल, 1000 योजन ऊँचे, अर्धघट के समान आकार वाले वङ्कामय मूल भाग से सहित, नाना रत्नमय अग्रभाग से सुशोभित हैं। प्रत्येक पर्वत का तिरछा विस्तार एक लाख सोलह हजार योजन है। इस प्रकार से जगती से पर्वतों तक तथा पर्वतों का विस्तार मिलाकर दो लाख योजन होता है। पर्वत का विस्तार 1,16000। जगती से पर्वत का अंतराल 42000± 42000 =

84000 । 1,16000 ± 84000 = 200000। ये पर्वत मध्य में रजतमय हैं, इनके ऊपर इन्हीं के नाम वाले कौस्तुभ ,कौस्तुभास देव रहते हैं। इनकी आयु, अवगाहना आदि विजयदेव के समान है। कदंब पाताल की उत्तर दिशा में उदक नामक पर्वत और दक्षिण दिशा में उदकाभास नामक पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत नीलमणि जैसे वर्ण वाले हैं। इन पर्वतों के ऊपर क्रम से शिव और शिवदेव निवास करते हैं। इनकी आयु आदि कौस्तुभदेव के समान है।

बड़वामुख पाताल की पूर्व दिशा में शंख और पश्चिम दिशा में महाशंख नामक पर्वत हैं। ये दोनों ही शंख के समान वर्ण वाले हैं। इन पर उदक, उदकावास देव स्थित हैं, इनका वर्णन पूर्वोक्त सदृश है। यूपकेसरी के दक्षिण भाग में दक नामक पर्वत और उत्तरभाग में दकवास नामक पर्वत हैं। ये दोनों पर्वत वैडूर्यमणिमय हैं। इनके ऊपर क्रम से लोहित, लोहितांक देव रहते हैं।

8 सूर्यद्वीप हैं : जगती से बयालीस हजार योजन जाकर ''सूर्यद्वीप'' नाम से प्रसिद्ध आठ द्वीप हैं। ये द्वीप पूर्व में कहे हुए कौस्तुभ आदि पर्वतों के दोनों पार्श्वभागों में स्थित होकर निकले हुए मणिमय दीपकों से युक्त शोभायमान हैं। त्रिलोकसार में 16 ''चन्द्रद्वीप'' भी माने गये हैं। यथा–अभ्यन्तर तट और बाह्य तट दोनों से 42000 योजन छोड़कर चारों विदिशाओं के दोनों पार्श्वभागों में दो–दो, ऐसे आठ ''सूर्यद्वीप'' हैं। और दिशा–विदिशा के बीच में जो आठ अन्तरदिशायें हैं, उनके दोनों पार्श्व भागों में दो–दो, ऐसे 16 ''चन्द्रद्वीप'' नामक द्वीप हैं। ये सब द्वीप 42000 योजन व्यास वाले और गोल आकार वाले हैं। यहाँ द्वीप से ''टापू'' को समझना।

समुद्र में गौतम द्वीप का वर्णन–लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से 42000 योजन आगे जाकर 12000 योजन ऊँचा एवं इतने ही प्रमाण व्यास वाला, गोलाकार गौतम नामक द्वीप है जो कि समुद्र में ''वायव्य'' विदिशा में है। ये उपर्युक्त सभी द्वीप वन, उपवन, वेदिकाओं से रम्य हैं और ''जिनमंदिर'' से सहित हैं। उन द्वीपों के स्वामी वेलंधर जाति के नागकुमार देव हैं। वे अपने–अपने द्वीप के समान नाम के धारक हैं।

मागधद्वीप आदि का वर्णन–भरतक्षेत्र के पास समुद्र के दक्षिण तट से संख्यात योजन जाकर आगे मागध, वरदाम और प्रभास नाम के तीन द्वीप हैं अर्थात् गंगा नदी के तोरणद्वार से आगे कितने ही योजन प्रमाण समुद्र में जाने पर ''मागध'' द्वीप है। जंबूद्वीप के दक्षिण वैजयंत द्वार से कितने ही योजन समुद्र में जाने पर ''वरदाम'' द्वीप है एवं सिंधु नदी के तोरण से कितने ही योजन जाकर ''प्रभास'' द्वीप है। इन द्वीपों में इन्हीं नाम के देव रहते हैं। इन देवों को भरतक्षेत्र के चक्रवर्ती वश में करते हैं।

ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र के उत्तर भाग में रक्तोदा नदी के पार्श्व भाग में समुद्र के अन्दर ''मागध'' द्वीप, अपराजित द्वार से आगे ''वरदाम'' द्वीप एवं रक्ता नदी के आगे कुछ दूर जाकर ''प्रभास'' द्वीप है जो कि ऐरावत क्षेत्र के चक्रर्वितयों के द्वारा जीते जाते हैं।

४८ कुमानुषद्वीप : लवणसमुद्र में कुमानुषों के 48 द्वीप हैं। इनमें से 24 द्वीप तो अभ्यन्तर भाग में एवं 24 द्वीप बाह्यभाग में स्थित हैं। जंबूद्वीप की जगती से 5000 योजन आगे जाकर 4 द्वीप चारों दिशाओं

में और इतने ही योजन जाकर चार द्वीप चारों विदिशाओं में हैं। जंबूद्वीप की जगती से 550 योजन आगे जाकर दिशा, विदिशा की अन्तर दिशाओं में 8 द्वीप हैं। हिमवन्, विजयार्ध पर्वत के दोनों किनारों में जगती से 6000 योजन जाकर 4 द्वीप एवं उत्तर में शिखरी और विजयार्ध के दोनों पार्श्व भागों से 600 योजन अन्तर समुद्र में जाकर 4 द्वीप हैं।

दिशागत द्वीप 100 योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं, ऐसे ही विदशागत द्वीप 55 योजन विस्तृत, अन्तरदिशागत द्वीप 50 योजन विस्तृत एवं पर्वत के पार्श्वगत द्वीप 25 योजन विस्तृत हैं।

ये सब उत्तम द्वीप वनखंड, तालाबों से रमणीय, फल फूलों के भार से संयुक्त तथा मधुर रस एवं जल से परिपूर्ण हैं। यहाँ कुभोगभूमि की व्यवस्था है। यहाँ पर जन्म लेने वाले मनुष्य ''कुमानुष'' कहलाते हैं और विकृत आकार वाले होते हैं। पूर्वादिक दिशाओं में स्थित चार द्वीपों के कुमानुष क्रम से एक जंघा वाले, पूँछ वाले, सींग वाले और गूंगे होते हैं। आग्नेय आदि विदिशाओं के कुमानुष क्रमशः शष्कुलीकर्ण, कर्णप्रावरण, लम्बकर्ण और शशकर्ण होते हैं। अन्तर दिशाओं में स्थित आठ द्वीपों के वे कुमानुष क्रम से सिंह, अश्व, श्वान, महिष, वराह, शार्दूल, घूक और बंदर के समान मुख वाले होते हैं। हिमवान् पर्वत के पूर्व–पश्चिम किनारों में क्रम से मत्स्यमुख, कालमुख तथा दक्षिण विजयार्ध के किनारों में मेषमुख, गोमुख कुमानुष होते हैं। शिखरी पर्वत के पूर्व पश्चिम किनारों पर क्रम से मेघमुख, विद्युन्मुख तथा उत्तर विजयार्ध के किनारों पर आदर्शमुख, हस्तिमुख कुमानुष होते हैं। इन सबमें से एकोरुक कुमानुष गुफाओं में होते हैं और मिष्ट मिट्टी को खाते हैं। शेष कुमानुष वृक्षों के नीचे रहकर फल फूलों से जीवन व्यतीत करते हैं।

इस प्रकार से दिशागत द्वीप 4, विदिशागत 4, अन्तर दिशागत 8, पर्वत तटगत 8। 4±4±8±8 = 24 अंतर्द्वीप हुए हैं, ऐसे ही लवण समुद्र के बाह्य भाग के भी 24 द्वीप मिलकर 24±24 = 48 अन्तर्द्वीप लवण समुद्र में हैं।

कुभोगभूमि में जन्म लेने के कारण–मिथ्यात्व में रत, मन्दकषायी, मिथ्यादेवों की भक्ति में तत्पर, विषम पंचाग्नि तप तपने वाले, सम्यक्त्व रत्न से रहित जीव मरकर कुमानुष होते हैं। जो लोग तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व और तप से युक्त साधुओं का किंचित् अपमान करते हैं, जो दिगंबर साधु की निंदा करते हैं, ऋद्धि रस आदि गौरव से युक्त होकर दोषों की आलोचना गुरु के पास नहीं करते हैं, गुरुओं के साथ स्वाध्याय वंदना कर्म नहीं करते हैं, जो मुनि एकाकी विचरण करते हैं, क्रोध कलह से सहित हैं, अरहंत गुरु आदि की भक्ति से रहित, चतुर्विध संघ में वात्सल्य से रहित, मौन बिना भोजन करने वाले हैं, जो पाप में संलग्न हैं वे मृत्यु को प्राप्त होकर विषम परिपाक वाले, पाप कर्मों के फल से इन द्वीपों में कुत्सित रूप से युक्त कुमानुष उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकसार में भी यह कहा है :

दुब्भावअसूचिसूदकपुप्फवई–जाइसंकरादीहिं।
कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायंते।।924।।

अर्थ – खोटे भाव से सहित, अपवित्र, मृतादि के सूतक पातक से सहित, रजस्वला स्त्री के

संसर्ग से सहित, जातिसंकर आदि दोषों से दूषित मनुष्य जो दान करते हैं और जो कुपात्रों में दान देते हैं ये जीव कुमानुष में उत्पन्न होते हैं क्योंकि ये जीव मिथ्यात्व और पाप से रहित विंहचित् पुण्य उपार्जन करते हैं अतः कुत्सित भोगभूमि में जन्म लेते हैं। इनकी आयु एक पल्य प्रमाण रहती है। एक कोस ऊँचे शरीर वाले हैं युगलियाँ होते हैं। मरकर नियम से भवनत्रिक देवों में जन्म लेते हैं। कदाचित् सम्यक्त्व को प्राप्त करके ये कुमानुष सौधर्म युगल में जन्म लेते हैं।

लवण समुद्र के दोनों ओर तट हैं। लवणसमुद्र में ही पाताल है अन्य समुद्रों में नहीं है। लवण समुद्र के जल की गहराई और ऊँचाई में हीनाधिकता है अन्य समुद्रों के जल में नहीं है। सभी समुद्रों के जल की गहराई सर्वत्र हजार योजन है और ऊपर में जल समतल प्रमाण है। लवणसमुद्र का जल खारा है। लवणसमुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं, लवणसमुद्र के मत्स्य नदी के गिरने के स्थान पर 9 योजन अवगाहना वाले एवं मध्य में 18 योजन प्रमाण हैं। इसमें कछुआ, शिंशमार, मगर आदि जलजंतु भरे हैं। पद्मपुराण में रावण की लंका को लवणसमुद्र में माना है अतः इस समुद्र में और भी अनेकों द्वीप हैं जैसा कि पद्मपुराण से स्पष्ट है।

यथा–अस्त्यत्र लवणांभोधौ व्रूहरग्राहसमाकुलैः।
प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भूतसंकुलः।।106।।

शतानिसप्त.....107 से 110 तक पद्म पुराण, 48 पर्व।

अर्थ– दुष्ट मगरमच्छों से भरे हुए इस लवण समुद्र में अनेक आश्चर्यकारी स्थानों से युक्त प्रसिद्ध ''राक्षसद्वीप'' है, जो सब ओर सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है। उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और 50 योजन चौड़ा है, सुवर्ण तथा नाना प्रकार की मणियों से देदीप्यमान एवं शिलाओं के समूह से व्याप्त है। राक्षसों के इन्द्र भीम ने मेघवाहन के लिये वह दिया था।

तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकार के चित्र–विचित्र वृक्षों से सुशोभित उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नाम की नगरी है जो मणि और रत्नों की किरणों तथा स्वर्ण के विमानों के समान मनोहर महलों से एवं क्रीडा आदि के योग्य सुन्दर प्रदेशों से अत्यंत शोभायमान है। जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथ्वी के समान जान पड़ती है।

लंका के समीप में और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्न, मणि तथा सुवर्ण से निर्मित हैं। वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरों से युक्त हैं, राक्षसों की क्रीडाभूमि हैं तथा महाभोगों से युक्त विद्याधरों से सहित हैं। संध्याकार सुबेल, कांचन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्धस्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं, जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगों को देने वाले हैं। वन–उपवन आदि से विभूषित हैं तथा स्वर्ण प्रदेशों के समान जान पड़ते हैं।

'छठे पर्व में 62 से 82 तक वर्णन है– इस लवणसमुद्र में बहुत से द्वीप हैं जहाँ कल्पवृक्षों के समान आकार वाले वृक्षों से दिशायें व्याप्त हो रही हैं। इन द्वीपों में अनेकों पर्वत हैं जो रत्नों से व्याप्त

ऊँचे–ऊँचे शिखरों से सुशोभित हैं। राक्षसों के इन्द्र भीम, अतिभीम तथा उनके सिवाय अन्य देवों के द्वारा आपके वंशजों के लिए ये सब द्वीप और पर्वत दिये गये हैं ऐसा पूर्वपरंपरा से सुनने में आता है। उन द्वीपों में अनेक नगर हैं। उन नगरों के नाम–संध्याकार, मनोह्लाद, सुबेल, कांचन, हरियोधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षम, अर्धस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कांत, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि सुन्दर–सुन्दर हैं।

यहाँ वायव्य दिशा में समुद्र के बीच तीन सौ योजन विस्तार वाला, बड़ा भारी वानरद्वीप है। उसमें महामनोहर हजारों अवांतर द्वीप हैं। उस वानर द्वीप के मध्य में रत्न सुवर्ण की लम्बी, चौड़ी शिलाओं से सुशोभित ''किष्कु'' नाम का बड़ा भारी पर्वत है। जैसे यह त्रिकूटाचल है वैसे ही वह किष्कु पर्वत है इत्यादि। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि इस समुद्र में और भी अनेक द्वीप विद्यमान हैं।

लवणसमुद्र की जगती 8 योजन ऊँची, मूल में 12 योजन, मध्य में 8 एवं ऊपर में 4 योजन प्रमाण विस्तार वाली है। इसके ऊपर वेदिका, वनखंड, देवनगर आदि का पूरा वर्णन जंबूद्वीप की जगती के समान है। इस जगती के अभ्यन्तरभाग में शिलापट्ट और बाह्यभाग में वन हैं। इस जगती की बाह्यपरिधि का प्रमाण 1581139 योजन प्रमाण है। यदि जंबूद्वीप प्रमाण 1–1 लाख के खंड किये जावें तो इस लवण समुद्र के जंबूद्वीप प्रमाण 24 खंड हो जाते हैं।

भूभ्रमण खण्डन :

कोई आधुनिक विद्वान कहते हैं कि जैनियों की मान्यता के अनुसार यह पृथ्वी वलयाकार चपटी गोल नहीं है किन्तु यह पृथ्वी गेंद या नारंगी के समान गोल आकार की है तथा सूर्य, चन्द्र, शनि, शुक्र आदि ग्रह, अश्विनी, भरिणी आदि नक्षत्रचक्र, मेरु के चारों तरफ प्रदक्षिणारूप से अवस्थित हैं, घूमते नहीं हैं। यह पृथ्वी एक विशेष वायु के निमित्त से ही घूमती है। इस पृथ्वी के घूमने से ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का उदय, अस्त आदि व्यवहार बन जाता है इत्यादि।

दूसरे कोई वादी पृथ्वी का हमेशा अधोगमन ही मानते हैं एवं कोई–कोई आधुनिक पंडित अपनी बुद्धि में यों मान बैठे हैं कि पृथ्वी दिन पर दिन सूर्य के निकट होती चली जा रही है। इसके विरुद्ध कोई–कोई विद्बान् प्रतिदिन पृथ्वी को सूर्य से दूरतम होती हुई मान रहे हैं। इसी प्रकार कोई–कोई परिपूर्ण जलभाग से पृथ्वी को उदित हुई मानते हैं।

किन्तु उक्त कल्पनायें प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं होती हैं। थोड़े ही दिनों में परस्पर एक–दूसरे का विरोध करने वाले विद्वान् खड़े हो जाते हैं और पहले–पहले के विद्वान् या ज्योतिष यन्त्र के प्रयोग भी युक्तियों द्वारा बिगाड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे–छोटे परिवर्तन तो दिन–रात होते ही रहते हैं।

इसका उत्तर जैनाचार्य इस प्रकार देते हैं– भूगोल का वायु के द्वारा भ्रमण मानने पर तो समुद्र, नदी, सरोवर आदि के जल की जो स्थिति देखी जाती है उसमें विरोध आता है।

जैसे कि पाषाण के गोले को घूमता हुआ मानने पर अधिक जल ठहर नहीं सकता है अतः भू

अचला ही है भ्रमण नहीं करती है। पृथ्वी तो सतत घूमती रहे और समुद्र आदि का जल सर्वथा जहाँ का तहाँ स्थिर रहे, यह बन नहीं सकता अर्थात् गंगा नदी जैसे हरिद्वार से कलकत्ता की ओर बहती है, पृथ्वी के गोल होने पर उल्टी भी बह जायेगी, समुद्र और कुओं के जल गिर पड़ेगे। घूमती हुई वस्तु पर मोटा अधिक जल नहीं ठहर कर गिरेगा ही गिरेगा।

दूसरी बात यह है कि पृथ्वी स्वयं भारी है। अधःपतन स्वभाव वाले बहुत से जल, बालू, रेत आदि पदार्थ हैं जिनके ऊपर रहने से नारंगी के समान गोल पृथ्वी हमेशा घूमती रहे और यह सब ऊपर ठहरे रहें, पर्वत, समुद्र, शहर, महल आदि जहाँ के तहाँ बने रहें यह बात असंभव है।

यहाँ पुनः कोई भूभ्रमणवादी कहते हैं कि घूमती हुई इस गोल पृथ्वी पर समुद्र आदि के जल को रोके रहने वाली एक वायु है जिसके निमित्त से समुद्र आदि ये सब जहाँ के तहाँ ही स्थिर बने रहते हैं।

इस पर जैनाचार्यों का उत्तर–जो प्रेरक वायु इस पृथ्वी को सर्वदा घुमा रही है, वह वायु इन समुद्र आदि को रोकने वाली वायु का घात नहीं कर देगी क्या ?यह बलवान् प्रेरक वायु तो इस धारक वायु को घुमाकर कहीं पेंह्रक देगी। सर्वत्र ही देखा जाता है कि यदि आकाश में मेघ छाए हैं और हवा जोरों से चलती है तब उस मेघ को धारण करने वाली वायु को विध्वंस करके मेघ को तितर–बितर कर देती है, वे बेचारे मेघ नष्ट हो जाते हैं या देशांतर में प्रयाण कर जाते हैं।

उसी प्रकार अपने बलवान् वेग से हमेशा भूगोल को सब तरफ से घुमाती हुई जो प्रेरक वायु है, वह वहाँ पर स्थित हुए समुद्र, सरोवर आदि को धारने वाली वायु को नष्ट–भ्रष्ट कर ही देगी अतः बलवान् प्रेरक वायु भूगोल को हमेशा घुमाती रहे और जल आदि की धारक वायु वहाँ बनी रहे, यह नितांत असंभव है।

पुनः भूभ्रमणवादी कहते हैं कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है अतएव सभी भारी पदार्थ भूमि के अभिमुख होकर ही गिरते हैं। यदि भूगोल पर से जल गिरेगा तो भी वह पृथ्वी की ओर ही गिरकर वहाँ का वहाँ ही ठहरा रहेगा अतः वह समुद्र आदि अपने–अपने स्थान पर ही स्थिर रहेंगे।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि–आपका कथन ठीक नहीं है। भारी पदार्थों का तो नीचे की ओर गिरना ही दृष्टिगोचर हो रहा है अर्थात् पृथ्वी में एक हाथ का लम्बा चौड़ा गड्ढा करके उस मिट्टी को गड्ढे के एक ओर ढलाऊ ऊँची कर दीजिये। उस पर गेंद रख दीजिये, वह गेंद नीचे की ओर गड्ढे में ही लुढ़क जायेगी। जबकि ऊपर भाग में मिट्टी अधिक है तो विशेष आकर्षण शक्ति के होने से गेंद को ऊपर देश में ही चिपकी रहना चाहिये था, परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः कहना पड़ता है कि भले ही पृथ्वी में आकर्षण शक्ति होवे किन्तु उस आकर्षण शक्ति की सामर्थ्य से समुद्र के जलादिकों का घूमती हुई पृथ्वी से तिरछा या दूसरी ओर गिरना नहीं रुक सकता है।

जैसे कि प्रत्यक्ष में नदी, नहर आदि का जल ढलाऊ पृथ्वी की ओर ही यत्र–तत्र किधर भी बहता हुआ देखा जाता है और लोहे के गोलक, फल आदि पदार्थ स्वस्थान से च्युत होने पर गिरने पर नीचे की ओर ही गिरते हैं।

इस प्रकार जो लोग आर्यभट्ट या इटली, यूरोप आदि देशों के वासी विद्वानों की पुस्तकों के अनुसार पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करते हैं और उदाहरण देते हैं कि–जैसे अपरिचित स्थान में नौका में बैठा हुआ कोई व्यक्ति नदी पार कर रहा है। उसे नौका तो स्थिर लग रही है और तीरवर्ती वृक्ष, मकान आदि चलते हुए दिख रहे हैं परन्तु यह भ्रम मात्र है, तद्वत् पृथ्वी की स्थिरता की कल्पना भी भ्रममात्र है।

इस पर जैनाचार्य कहते हैं कि साधारण मनुष्य को भी थोड़ा सा ही घूम लेने पर आखों में घूमनी आने लगती है (चक्कर आने लगता है), कभी–कभी खंड देश में अत्यल्प भूकम्प आने पर भी शरीर में कंपकंपी, मस्तक में भ्रांति होने लग जाती है तो यदि डाकगाड़ी के वेग से भी अधिक वेगरूप पृथ्वी की चाल मानी जायेगी तो ऐसी दशा में मस्तक, शरीर,पुराने ग्रह, वूह्पजल आदि की क्या व्यवस्था होगी ? बुद्धिमान् स्वयं इस बात पर विचार कर सकते है

उर्ध्व लोक वर्णन

सुदर्शन मेरु पर्वत के शिखर की चोटी के एक बाल के अन्तर से प्रथम स्वर्ग ऋतु विमान हैं, वहीं से उर्ध्व लोक का प्रारंभ होता है। स्वर्गों में दो दो युगल स्वर्ग अर्थात आठ जोड़ों या युगलों में सोलह स्वर्ग हैं, यों सब स्वर्ग विमानों में हैं, उर्ध्व लोक के कुल विमानों की संख्या चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस हैं।

दो दो युगलों में सोलह स्वर्ग हैं, स्वर्गों के ऊपर नव ग्रैवियक हैं, तीन अधः ग्रैवियक हैं, तीन मध्य और तीन उर्ध्व ग्रैवियक हैं इस प्रकार नव ग्रैवियक एक एक से ऊपर हैं। ग्रैवियकों के ऊपर नव अनुदिश हैं, उनमें एक बीच में और आठ चारों ओर दिशाओं और विदिशाओं में हैं। अनुदिश के ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं, एक बीच में और चार चारों ओर दिशाओं में हैं। इस प्रकार उर्ध्व लोक की रचना हैं, इन सबके ऊपर मोक्ष शिला है, हे भव्य जीवों ! अब मैं इन सबके नाम क्रम से कहता हूं उसे ध्यान से सुनो।

स्वर्गों के नाम ?

सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इस प्रकार यें क्रम से सोलह स्वर्गों के नाम हैं। इन्हें कल्प भी कहते हैं कारण इन स्वर्ग के देवों में दश प्रकार के कल्प अर्थात भेद होते हैं, जिनका वर्णन आगे करेंगे ।

नव ग्रैवियक के नाम ?

सुदर्शन, अमोध, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, ग्रैवियक, सुमनस, सोमनस और प्रीतिंकर इस प्रकार यें क्रम से नव ग्रैवियक एक एक के ऊपर हैं जिन्हें तीन अधः, तीन मध्य और तीन उर्ध्व ग्रैवियक कहते हैं।

नव अनुदिश के नाम ?

आदित्य, अर्ची, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अर्क, स्फाटिक इस प्रकार नव अनुदिश विमान एक ही पटल में स्थित हैं इनमें चार श्रेणिबद्ध हैं जो चारों दिशाओं में हैं और चार प्रकीर्णक हैं जो चार विदिशाओं में हैं, और एक इन्द्रक है जो कि सबके बीच में हैं।

पांच अनुत्तर विमान निम्न प्रकार हैं :

विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि।

चार चारों दिशाओं में और सबके बीच में सबसे ऊँचा सर्वार्थसिद्धि विमान हैं। यह सर्वार्थसिद्धि का विमान और सातवें नरक का इन्द्रक बिल और जम्बूद्वीप यें तीनों बराबर बराबर एक लक्ष या लाख योजन के विस्तार के हैं।

सर्वार्थसिद्धि के विमान से बारह योजन ऊँची ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है, उसके

बीच में पैंतालिस लाख योजन के विस्तार में सिद्ध शिला है, उस सिद्ध शिला पर अनंत सिद्ध भगवान विराजमान है। इस प्रकार उर्ध्व लोक की अत्यंत महिमा हैं उस उर्ध्व लोक में देव, इन्द्र और अहमिन्द्र रहते हैं, वहाँ के पटल और विमान वगैरह का वर्णन यहाँ करता हूं।

उर्ध्व लोक में त्रेसठ 63 पटल हैं, नव ग्रैवियक में नव पटल हैं।

अब देवों के विमानों का वर्णन सुनिए।

स्वर्ग विमान वर्णन ?

स्वर्गों में विमान होते हैं इसीलिए स्वर्ग के देव वैमानिक कहलाते हैं यें विमान देवों को बहुत आराम और सुख देने वाले इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक कहे जाते हैं। कुल विमान चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस की संख्या में हैं। प्रत्येक विमान में एक एक जिनालय है, इनकी संख्या भी विमानों के समान हैं।

पहले स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान, दूसरे स्वर्ग में अठाईस लाख, तीसरे स्वर्ग में बारह लाख, चौथे स्वर्ग में आठ लाख, पांचवें दृ छठवें स्वर्ग में चार लाख, सातवें – आठवें स्वर्ग में पचास हजार, नवमें – दशवें स्वर्ग में चालीस हजार, ग्याहरवें दृ बारहवें स्वर्ग में, तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक सात सौ विमान हैं। तीन अधः ग्रैवियक में एक सौ ग्यारह विमान, तीन मध्य ग्रैवियक में एक सौ सात विमान और तीन उर्ध्व ग्रैवियक में इक्यावन विमान हैं। नव अनुदिश में नव विमान और पांच अनुत्तर में पांच विमान हैं इस प्रकार उर्ध्व लोक में स्वर्ग के विमानों की संख्या हैं जिनमें देवगण रहते हैं।

विमानों का विशेष वर्णन :

पटल के बीच में विमान इन्द्रक कहा जाता हैं और चारों दिशाओं और विदिशाओं में जो विमान होते हैं वें श्रेणीबद्ध कहलाते हैं, और दिशाओं और विदिशाओं के बीच अन्तराल में जो विमान स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

देव विमानों में सोने के रत्नमयी महल होते हैं उन महलों में मरकतमणि और इन्द्रनीलमणि के तोरणों से युक्त दरवाजे हैं। यें विमान सात, आठ, नव, दश भूमियों से युक्त होते हैं, तथा विमानों में बड़ी बड़ी नाट्यशालाएं होती है। विमानों में आसनशाला, क्रीड़ाशाला, मणिमय शय्याएं, निर्मल एवं उत्तम दीपों व विविध पुष्पों से परिपूर्ण महल होते हैं।

सौधर्म आदि स्वर्गों के मुख्य मुख्य विमानों के कुछ नाम निम्न प्रकार हैं ऋतु, सौमनस, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिकंर, रम्यक, लक्ष्मी, मान्दिति नाम है। यें विमान लाख लाख योजन के विस्तार के होते हैं। इन देव विमानों के बीच में इन्द्र का रत्नमयी महल होता है, इस महल में मणिमय सिंहासन होता है, उस पर इन्द्र बैठता हैं।

देव और देवियाँ इन्द्र की नित्य सेवा करती हैं सौधर्म और ईशान इन्द्र के कुल एक लाख और साठ हजार देवियाँ और आठ आठ अग्रदेवियाँ होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक इन्द्र के एक एक प्रतीन्द्र और अन्य देवगण इन्द्र की आज्ञा में रहते हैं।

इन्द्र के प्रासादों के चारों दिशाओं में देवियों के स्वर्णमयी प्रासाद होते हैं, उनमें इन्द्र की वल्लभाएं और देवागंनाएं रहती हैं। इन्द्र के महल के आगे सुन्दर न्यग्रोध जाति के वृक्ष होते हैं जो कि जम्बू वृक्ष के समान पार्थिव होते हैं, उन वृक्षों के तल में चारों दिशाओं में जिन प्रतिमाएँ विराजमान होती है।

नगर वर्णन ?

स्वर्गों में अकृत्रिम अनादि निधन नगर हैं उनकी संख्या आगम में कही है, ये नगर कम ज्यादा नही होते। पहले स्वर्ग में चौरासी हजार, दूसरे स्वर्ग में अस्सी हजार, तीसरे स्वर्ग में बहत्तर हजार, चौथे स्वर्ग में सत्तर हजार, पांचवें दृ छठवें स्वर्ग में साठ हजार, सातवें –आठवें स्वर्ग में पचास हजार, नवमें दृ दशवें स्वर्ग में चालीस हजार, ग्याहरवें दृ बारहवें स्वर्ग में तीस हजार तथा तेरहवें स्वर्ग से सोलहवें स्वर्ग तक एक दृ एक स्वर्ग में बीस बीस हजार नगर हैं।

मानस्तंभ वर्णन ?

सौधर्म स्वर्ग से चौथे माहेन्द्र स्वर्ग तक इन चार स्वर्गों में बड़े सुंदर मानस्तंभ है, उन मानस्तंभों में तीर्थंकरों के वस्त्र व आभूषण रखने के रत्नमयी सुंदर पिटारे होते हैं। पहले स्वर्ग के मानस्तंभ में भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं, दूसरे स्वर्ग के मानस्तंभ में ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं, तीसरे स्वर्ग के मानस्तंभ में पूर्व विदेह के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं और चौथे स्वर्ग के मानस्तंभ में पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं।

मानस्तंभों में रत्नों के पिटारे में यें वस्त्राभूषण सुरक्षित रहते हैं, इन्द्र तीर्थंकरों के जन्माभिषेक को समय सुमेरु पर्वत पर बड़े हर्ष से जिनेन्द्र बालक को पहनाता है। मानस्तंभ के पास सुंदर रत्नमयी उपपाद शैय्या है जिन पर इन्द्र का उपपाद जन्म होता है। उसके पास में बड़े ऊँचे भव्य शिखर युक्त जिन मंदिर होता है, जिनमें रत्नमयी दिव्य वीतराग मुद्रा वाली जिन प्रतिमा सुशोभित होती हैं।

स्वर्गों की समस्त देवागंनाएं पहले व दूसरे स्वर्ग में ही जन्म प्राप्त करती हैं, अपने अपने स्वर्ग के देव व इन्द्र अपनी अपनी देवागंनाओं को विमानों में ले जाते हैं। बिना देवों के केवल देवागंनाओं वाले विमान पहले स्वर्ग में छः लाख और दूसरे स्वर्ग में चार लाख हैं तथा जिनमें देव और देवागंनाएं दोनों रहती हैं उन विमानों की संख्या पहले स्वर्ग में छब्बीस लाख और दूसरे स्वर्ग में चौबीस लाख हैं।

देवों के दश भेद वर्णन ?

चारों प्रकार के देवों के दश दश भेद हैं उनके नाम जो कि सुनने में सुखकर हैं ?

निम्न प्रकार हैं :

१. इन्द्र, २.सामानिक, ३.त्रायस्त्रिंश, ४.पारिषद्, ५.आत्मरक्ष,
६.लोकपाल, ७.अनीक, ८.प्रकीर्णक, ९.आभियोग्य, १०. किल्विषक,

इस प्रकार यें दश भेद होते हैं।

इनमें व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के त्रासस्त्रिंश और लोकपाल यें दो भेद नही होते, इसलिए इनके आठ भेद कहे गए हैं, इन सबमें इन्द्र प्रधान होता है। जिस प्रकार मनुष्य लोक में राजा सबसे बड़ा होता है उसी प्रकार इन्द्रसभा में सबसे ऊँचे आसन पर बैठने वाला इन्द्र होता है, सब देव जिसकी आज्ञा मानते हैं वह इन्द्र कहलाता है। सौधर्म स्वर्ग की सभा का नाम सुधर्मा हैं।

जो राजा के समान सुख भोगता है, जिसकी आज्ञा देवगण मानते हैं तथा जो अन्य देवों में असाधारण अणिमादि गुणों के संबंध से शोभते हैं, वें इन्द्र कहलाते हैं। जो इन्द्र के समान होता है, माता दृ पिता के समान जिनका आदर होता है वें देव सामानिक देव कहलाते हैं।

जो मंत्री और पुरोहित के समान हैं, वें त्रासस्त्रिंश कहलाते हैं। यें तेंतीस ही होते हैं इसीलिए वें त्रायस्त्रिंश कहलाते हैं।

जो सभा में मित्र और प्रेमीजनों के समान होते हैं, वें पारिषद् कहलाते हैं।

जो अंगरक्षक के समान हैं, वें आत्मरक्षक कहलाते हैं।

कोतवाल के समान देव या जो लोक का पालन करते हैं, वें लोकपाल कहलाते हैं।

सेना के समान देव, जैसे यहाँ सेना है उसी प्रकार सात प्रकार के पदाति आदि अनीक कहलाते हैं।

जो गाँव और शहरों में रहने वालों के समान हैं, उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

जो दास के समान वाहन आदि कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वें आभियोग्य कहलाते हैं।

चाण्डाल की तरह के देव किल्विषक कहलाते हैं। जो सीमा के पास रहने वालों के समान हैं, वें किल्विषक कहलाते हैं। किल्विष पाप को कहते हैं। इसकी जिनके बहुलता होती हैं, वें किल्विषक कहलाते हैं।

इस प्रकार देवों के दश भेद होते हैं, स्वर्ग से ऊपर ग्रैवियक आदि में सब देव समान होते हैं उनमें कोई भेद नही होता है, इसलिए वें अहमिन्द्र कहलाते हैं।

स्वर्गों में हीनाधिकता

स्वर्ग के देवों में सुख, कांति, लेश्याविशुद्धि व इन्द्रियों के विषय और अवधि ज्ञान का विषय नीचे वाले देवों से ऊपर के देवों में अधिक होता है और गति, शरीर और परिग्रह अभिमान में ऊपर दृ ऊपर हीनता होती हैं।

स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन ?

सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं, प्रथम स्वर्ग से चौथे स्वर्ग अर्थात प्रारंभ के चार स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है, पांचवें दृ छठवें इन दो स्वर्गों में एक इन्द्र होता है, सातवें –आठवें, नौवें दृ दशवें, ग्याहरवें दृ बारहवें स्वर्गों में इन दो दो स्वर्गों में एक एक इन्द्र होता है। तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक प्रत्येक में एक एक इन्द्र होता है। इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।

इन बारह इन्द्रों में छः तो दक्षिणेन्द्र और छः उत्तरेन्द्र होते हैं, सौधर्मेन्द्र, सानत्कुमार, ब्रह्मा,

लान्तव, आनत और आरण यें छः दक्षिणेन्द्र और शेष छः उत्तरेन्द्र हैं। बारह इन्द्र और बारह उपेन्द्र हैं। स्वर्गों के देव कल्पवासी और ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवियक, नव अनुदिश, पांच अनुत्तर विमानों के देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। उनके वहां देवागंनाएं नही होती, सब समान होते हैं। अपने अपने विमानों को छोड़कर वें अन्यत्र कहीं नहीं जाते। वें बहुत काल तक पूर्व भव में बँधे हुए पुण्य को भोगते हैं। जो मनुष्य पर्याय में मुनि होकर महान तप करते हैं वें ही वहां जन्म लेते हैं।

स्वर्गों में लेश्या का वर्णन

पहले – दूसरे स्वर्ग के देवों में पीत लेश्या, तीसरे दृ चौथे में पीत दृ पद्म, पांचवें से आठवें तक पद्म लेश्या, नवमें से बारहवें स्वर्ग तक पद्म और शुक्ल लेश्या, तेरहवें स्वर्ग से नव ग्रैवियक तक शुक्ल लेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तर विमानों में परम शुक्ल लेश्या कही गयी है, इस प्रकार उर्ध्व लोक के देवों की भाव लेश्या जिनागम में वर्णित हैं।

स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु का वर्णन

पहले व दूसरे के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक, तीसरे चौथे स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक, पांचवें छठवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दश सागर से कुछ अधिक, सातवें आठवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु चौदह सागर, नवमें दशवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सोलह सागर, ग्याहरवें बारहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु अठारह सागर, तेरहवें चौदहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु बीस सागर, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर की है।

इनसे ऊपर नौ ग्रैवियक में उत्कृष्ट आयु क्रम से एक एक सागर की उत्कृष्ट आयु है। जैसे : प्रथम ग्रैवियक में तेईस सागर की व अंतिम नवमें ग्रैवियक में एक एक सागर बढ़ाते हुए इकतीस सागर की आयु है।

नव अनुदिशों में बत्तीस सागर और पांच अनुत्तर विमानों में तैंतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। इस प्रकार उर्ध्व लोक के देवों की उत्कृष्ट आयु जिनेन्द्र देव ने कही है।

स्वर्ग में देवों की जघन्य आयु का वर्णन ?

पहले व दूसरे स्वर्ग की जघन्य आयु एक पल्य, तीसरे चौथे स्वर्ग की जघन्य आयु दो सागर, पांचवें छठवें स्वर्ग की जघन्य आयु सात सागर, सातवें आठवें स्वर्ग की जघन्य आयु दस सागर, नवमें दसवें स्वर्ग की जघन्य आयु चौदह सागर, ग्यारहवें बारहवें स्वर्ग की जघन्य आयु सोलह सागर, तेरहवें चौदहवें स्वर्ग की जघन्य आयु अठारह सागर, पन्द्रहवें सोलहवें स्वर्ग की जघन्य आयु बीस सागर की होती है।

प्रथम ग्रैवियक की जघन्य आयु बाईस सागर, दूसरे ग्रैवियक की जघन्य आयु तेईस सागर, तीसरे ग्रैवियक की जघन्य आयु चौबीस सागर, चौथे ग्रैवियक की जघन्य आयु पच्चीस सागर, पांचवें ग्रैवियक की जघन्य आयु छब्बीस सागर, छठे ग्रैवियक की जघन्य आयु सत्ताईस सागर, सातवें

ग्रैवियक की जघन्य आयु अठ्ठाईस सागर, आठवें ग्रैवियक की जघन्य आयु उनतीस सागर, नवमें ग्रैवियक की जघन्य आयु तीस सागर की होती है।

नव अनुदिशों में जघन्य आयु इकतीस सागर हैं।

कहीं कहीं बत्तीस सागर भी कहा हैं ।

पांच अनुत्तर विमानों में जघन्य आयु और उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर कही है और कहीं कहीं बत्तीस सागर कही है ।

देवों में आहार का समय ?

जिन देवों की एक सागर की आयु है उनका एक हजार वर्ष में एक बार दिव्य अमृतमय मानसिक आहार होता है।

जिन जिन देवों की जितने सागर की आयु है उतने उतने हजार वर्षों में उनका आहार होता है। देवों के आहार का यह नियम है।

इन्द्रों की सेना व परिवार वर्णन ?

इन्द्र के वृषभ, तुरगंम, रथ, गज, पदाति, गंधर्व, नर्तक अर्थात बैल, घोड़े, रथ, हाथी, पैदल, गाने वाले और नृत्य करने वाले ऐसे सात प्रकार की सेना वाले देव होते हैं इन्हें अनीक देव कहते हैं।

इस प्रकार सात सात प्रकार की सेना प्रत्येक इन्द्र की होती है। सौधर्म इन्द्र के एक करोड़ छः लाख अड़सठ हजार बैल होते हैं, और इतने ही संख्या में तुरंग (घोड़े) आदि अन्य सेनाएँ होते हैं।

इन्द्रों की देवागंनाओं का वर्णन ?

सौधर्म और ईशान इन्द्र के एक एक ज्येष्ठ देवी अर्थात प्रधान शची होती है और अत्यन्त सुंदर सोलह सोलह हजार पारिवारिक देवियाँ होती है। सानत्कुमार इन्द्र के आठ हजार देवियाँ और माहेन्द्र स्वर्ग के चार हजार, ब्रह्मेन्द्र के दो हजार, तथा लांतवेन्द्र और महाशुक्र इन्द्र के एक एक हजार पारिवारिक देवियाँ होती हैं। सहस्रार इन्द्र के पाँच सौ और आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के ढ़ाई सौ ढ़ाई सौ पारिवारिक देवियाँ होती हैं।

वल्लभाओं का वर्णन ?

प्रथम और द्वितीय स्वर्ग सौधर्म और ईशान इन्द्र के बत्तीस हजार वल्लभाएं होती हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्र के आठ हजार वल्लभाएं होती हैं। ब्रह्मेन्द्र के दो हजार, लांतवेन्द्र के पाँच सौ,महाशुक्र के ढ़ाई सौ तथा सहस्रार इन्द्र के सौ पच्चीस वल्लभाएं होती हैं। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार इन्द्रों के त्रेसठ त्रेसठ वल्लभाएं होती हैं इस प्रकार की वल्लभाओं की संख्या का प्रमाण हैं।

देवों के मुकुट चिन्ह वर्णन ?

सौधर्म आदि स्वर्गों के इन्द्र और देवों के नौ प्रकार के चिन्ह होते हैं उनके नाम हैं कृ सुअर, हिरण, भैंसा, मछली, मेंढक, छागला, बैल, कल्पवृक्ष आदि यथाक्रम से देवों के मुकुट पर यें चिन्ह होते हैं यें मुकुट रत्न और मणियों के बने होते हैं, इन मुकुट चिन्हों से इन्द्रों की पहचान होती हैं।

कल्पातीत देवों का वर्णन ?

स्वर्गों से ऊपर के जो नव ग्रैवियक, नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में रहने वाले सब देव अहमिन्द्र कहलाते हैं। उनमें किसी प्रकार की विषमता नही होती सब देव समान होते हैं। अहमिन्द्रों के भी सुंदर सुंदर विमान होते हैं वें सभाओं, गीतशालाओं, चौत्यवृक्षों से युक्त व बड़े आश्चर्यकारी रमणीय महलों से युक्त होते हैं।

उन विमानों की ऊँचाई तीन अधःग्रैवियक में दो सौ योजन तथा मध्य तीन ग्रैवियक में डेढ़ सौ योजन ऊँचे विमान होते हैं। नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों की ऊँचाई क्रम से पचास और पच्चीस योजन है।

अवधि ज्ञान का क्षेत्र ?

स्वर्गों में पहले और दूसरे अवधि ज्ञान का क्षेत्र पहले नरक, तीसरे चौथे स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र दूसरे नरक, पाँचवें स्वर्ग से आठवें इन चार स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र, नवमें से बारहवें स्वर्ग तक के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र चौथे नरक तक, तेरहवें और सोलहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र पाँचवें नरक तक हैं, नौ ग्रैवियक के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र छठवें नरक तक और नौ अनुदिश के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र सातवें नरक होता है। पाँच अनुत्तर विमानों के देवों का अवधिज्ञान का क्षेत्र चौदह राजू प्रमाण त्रस नाली पूर्ण तक होता है।

स्वर्गों की देवागंनाओं की आयु ?

स्वर्ग के छः दक्षिणेन्द्र जो कि एक भवावतारी होते हैं उनकी देवागंनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से पांच, नौ, तेरह, सत्रह, चौंतीस तथा अड़तालीस पल्य की है तथा छः उत्तरेन्द्र की देवागंनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से सात, ग्यारह, तेईस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पल्य की जिनेन्द्र भगवान ने कही है।

देवों में गुणस्थान आदि का वर्णन

देवों में प्रारंभ के प्रथम गुणस्थान से लेकर चार गुणस्थान होते हैं, पर्याप्तियां छहों होती है, प्राण दश, संज्ञायें चार, इन्दिय पांच, त्रस काय, योग ग्यारह, वेद दो, दर्शन तीन, ज्ञान छः इस प्रकार कुछ वर्णन यहाँ मैंने किया है, इनका विस्तृत वर्णन जिनागम से जानना चाहिए।

– प्रखर जैन (भोपाल)

तिर्च्छालोक में जिनमंदिर

तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र है। एक द्वीप और एक समुद्र, एक द्वीप ओर एक समुद्र। सर्वप्रथम जम्बू नामक द्वीप है उसके चारों ओर चूडी के आकार का लवण समुद्र है। इसी तरह असंख्य द्वीपसमुद्रो में अन्तिम स्वयभूरमणसमुद्र है।

जम्बूद्वीप के शाश्वत मंदिर

सर्वप्रथम जम्बू नामक एक लाख योजन प्रमाण का सुन्दर द्वीप है। जिसका आकार थाली जैसा है। उसमें तीन कर्मभूमि और छः अकर्मभूमि है। जम्बू द्वीप में क्षेत्र की मर्यादा को बांधने वाले 6 पर्वत है। एक क्षेत्र एक पर्वत का क्रम है।

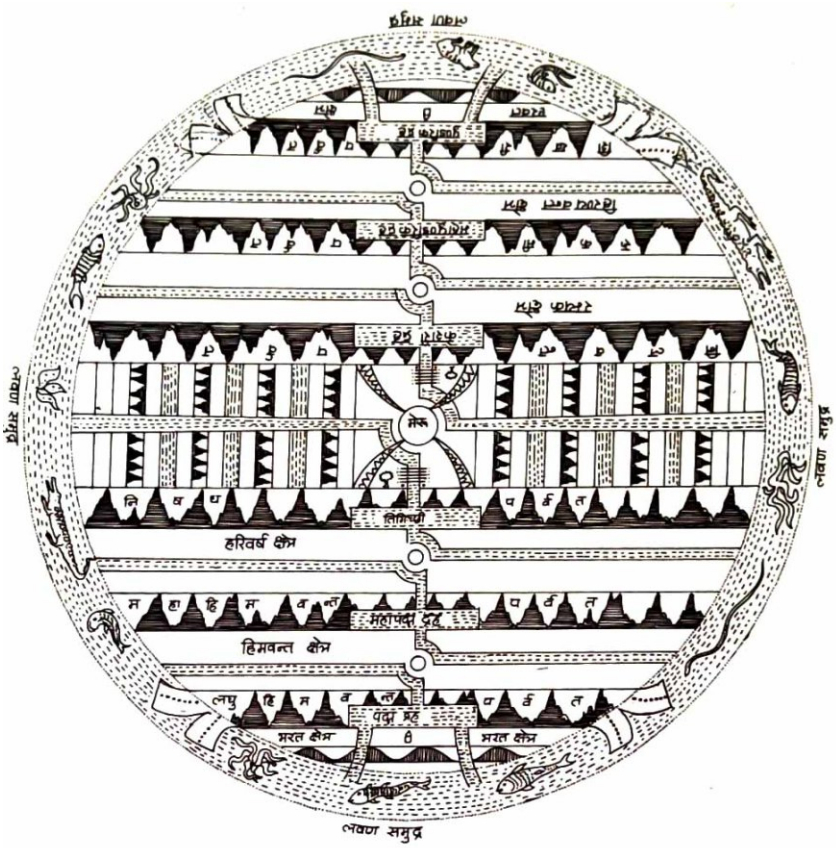

जम्बूद्वीप के मध्य में महाविदेह नामक विशाल क्षेत्र है। और महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरु नामक सुवर्ण का एक लाख योजन प्रमाण वाला पर्वत है। महाविदेह क्षेत्र में मेरुपर्वत की अपेक्षा से